अध्यात्म

धर्म का अवलंबन

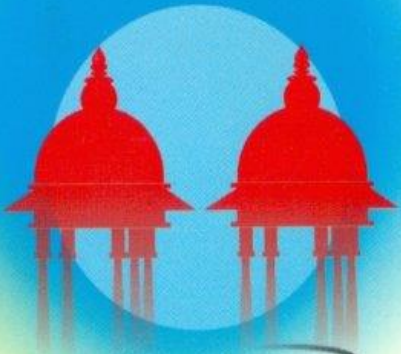

श्रीराम शर्मा आचार्य

अध्यात्म धर्म का अवलंबन

*

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : ९.०० रुपये

कोई व्यक्ति पूर्णतः बुरा या भला नहीं है !

कोई व्यक्ति न तो पूर्णतः दोषयुक्त ही होता है और न उसमें सब अच्छाइयाँ-ही-अच्छाइयाँ होती हैं। गुण और दोषों के समन्वय से मनुष्य की रचना हुई है। उसका ठीक-ठीक विश्लेषण करने के लिए वैज्ञानिक बुद्धि चाहिए। डॉक्टर लोग शव परीक्षा करते समय लाश के अंग-प्रत्यंगों को चीरते हैं और जिस स्थान पर जो भले-बुरे तत्त्व मिलते हैं, उसका निरीक्षण पुस्तक में दर्ज करते हैं। इसी बुद्धि से दूसरों के गुणों पर विचार करना चाहिए। जान-बूझकर इरादतन बुरी भावना से जो दुष्कर्म किए जाते हैं, उनसे व्यक्ति अधिक दोषी बनता है; किंतु बहुत-से काम ऐसे भी होते हैं जो भूल से, भ्रमवश, परिस्थितियों के कारण वह कर बैठता है। दुर्भाग्य से इरादतन वैसा करने की उसकी इच्छा नहीं होती। ऐसी दशा में वह उतनी मात्रा में दोषी न ठहराया जाएगा। जिसने खूब सोच-समझकर बुरी नीयत से दुष्कर्म किया है, वह क्रोध का अधिकारी है, किंतु जिसने भूल या परिस्थितिवश गलती की है, वह दया का पात्र है। इससे उनका व्यक्तित्व इतना निंदित नहीं बनता। इसी प्रकार पुण्य कर्मों के बारे में समझना चाहिए। सद्भावना से उत्कंठापूर्वक जो शुभ कर्म किए जाते हैं, वे वास्तविक पुण्य हैं। किंतु गलती से बिना जाने या परवश जो पुण्य बन पड़ते हैं, उनका उतना महत्त्व नहीं है। साधारण बुद्धि के लोग काम का स्थूल रूप देखकर कर्ता के बारे में भली-बुरी धारणा बना लेते हैं, पर यह गलत तरीका है। कामों का बाह्य रूप देखकर व्यक्ति का असली स्वरूप नहीं जाना जा सकता। □

पहला पाठ

सबको आत्मभाव से देखिए !

"**आत्मवत् सर्वभूतेषु**" की शिक्षा अध्यात्मवाद की व्यावहारिक प्रक्रिया है। श्रेष्ठ नागरिक बनने का मर्म इसमें है कि अन्य लोगों को अपने समान समझा जाए। दूसरे शब्दों में इसी बात को यों कह सकते हैं कि दूसरों से वैसा व्यवहार करना चाहिए जैसा कि आप अपने लिए चाहते हैं। आप जैसा व्यवहार अपने साथ होता हुआ देखकर प्रसन्न होते हैं, जिस आचरण की दूसरों से आशा करते हैं, वैसा ही आप स्वयं भी दूसरों के साथ में कीजिए। दूसरों के सुख में सुखी होने से मुफ्त में ही वह सुख प्रचुर मात्रा में मिल जाता है, जिसको प्राप्त करने में बहुत खरच करना पड़ता है। सुख के लिए बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है। यदि आप दूसरों को सुखी देखकर प्रसन्न हुआ करें, दूसरों की बढ़ती देखकर आनंद अनुभव किया करें, तो अनायास ही सुखी होने के असंख्य अवसर प्राप्त होते रह सकते हैं। पास-पड़ोस में, सगे-संबंधियों में, परिचितों-अपरिचितों में ईश्वर की कृपा से सुखदायक घड़ियों का आगमन हुआ ही करता है। यदि उनकी बढ़ती को देखकर उदार हृदय व्यक्ति की तरह खुश होने की आदत डाली जाए तो निस्संदेह अपने आनंद की सीमा अनेक गुनी बढ़ सकती है। जिसके घर में मुफ्त का माल आकर जमा होता रहता है, उसका अमीर बन जाना स्वाभाविक है। जिसको दूसरों के सुख में आनंद आता है, उसका हर घड़ी प्रसन्नता से परिपूर्ण रहना स्वाभाविक है। आनंद और सुख की प्राप्ति के लिए आप लालायित हैं, तो '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' का मंत्र हृदयंगम करके अपना आत्मभाव दूसरों के साथ जोड़ दें। उनके सुख में अपने को सुखी करने का अभ्यास करें, तो जिसके लिए आप लालायित हैं, उस वस्तु को आसानी से पा सकते हैं। वाटिका में

खिले हुए पुष्पों को देखकर, सुंदर चित्रों को देखकर, मनमोहक प्राकृतिक दृश्यों को देखकर, आपका चित्त प्रसन्न हो जाता है। जड़ पदार्थों का वैभव देखकर दिल की कली खिल उठती है तो क्या कारण है कि चैतन्य स्वजातीय प्राणियों के उत्कर्ष पर हृदय आनंद से पुलकित नहीं होता? ईर्ष्या, डाह, कुढ़न, जलन के दुर्गुणों को यदि आपने नहीं अपना लिया है, तो कोई कारण नहीं कि अपने सुखी मित्रों के सौभाग्य पर आनंद प्रकट न करें।

दूसरों के दुःख में दुखी होने की वृत्ति को अपनाकर आप दया, करुणा, उदारता, सेवा, सहायता जैसी अमूल्य निधियों को प्रचुर मात्रा में संचय कर सकते हैं। यह संचय कुछ कम मूल्यवान नहीं है। दूसरों के दुःख में दुखी होने से तामसी कष्ट नहीं होता। जो कष्ट होता है, उसे पीड़ा नहीं कहते। पराये दुःख में दुखी होने की वृत्ति को शब्दों में दुःख अवश्य कहा जाता है, पर यथार्थ में वह एक प्रकार का आर्द्र सुख है। दूसरों को कष्ट में देखकर फोड़े के समान दरद, ज्वर के समान ताप, नाश धन की तरह वेदना या पुत्र-मृत्यु की तरह हाहाकारी क्रंदन उत्पन्न नहीं होता, वरन कर्त्तव्य की प्रेरणा करने वाली एक कसक उठती है, जो प्रेम की तरह मीठी, श्रद्धा की तरह पवित्र और करुणा की तरह तरल होती है। वह दुःख स्वर्गीय शांति को अपने अंदर छिपाए रहता है। पराये दुःख को देखकर जो आँसू गिरता है, वह भीतर के अनेक पापों को बहा ले जाता है और हृदय को हलका तथा पवित्र बना देता है।

पराये सुख में सुखी और पराये दुःख में दुखी होने की वृत्तियाँ परम सात्विक एवं उच्च कोटि की हैं। इनका संचार जिसके अंदर होने लगता है, उसको भीतर-ही-भीतर शांति और संतोष की आनंददायक सरिता बहती हुई दृष्टिगोचर होती है। अन्य सद्गुणों और उत्तम स्वभावों की खेती इस शीतल जल को प्राप्त करके फलने-फूलने लगती है। केवल अपने ही हानि-लाभ से प्रभावित

होने वाले और दूसरों की स्थिति में कुछ भी दिलचस्पी न लेने वाले स्वार्थी लोग बहुत ही सीमित क्षेत्र में बँधे रहते हैं, वे ऐश-आराम या दुःख-दरद की निकृष्ट कोटि का हर्ष-विषाद अनुभव करते रहते हैं। सात्विक और उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियाँ स्वार्थ में नहीं परमार्थ में मिलती हैं। जिनको पराये सुख-दुःखों में दिलचस्पी है, वे ही उस ऊँचे आनंद का अनुभव कर सकते हैं।

आप दूसरों से यह आशा करते होंगे कि यदि कोई व्यक्ति कुछ चीज उधार ले जाए, तो उसे अच्छी हालत में ठीक समय पर वापस कर दे। यदि किसी ने कुछ वचन दिया है, तो उसे यथोचित रीति से पालन करे। सभ्य व्यवहार की, समय की पाबंदी की दूसरों से आशा की जाती है और यह ख्याल किया जाता है कि यदि कुछ कष्ट हमारे ऊपर आ पड़ेगा, तो अन्य लोग हमारी सहायता करेंगे। जिस प्रकार की आशाएँ आप दूसरे लोगों से करते हैं, ठीक वैसी ही दूसरे आपसे करते हैं। यह भलमनसाहत का तकाजा है। मनुष्यता के प्रारंभिक कर्त्तव्यों का पालन करना हर मनुष्य का फर्ज है। सार्वजनिक स्थानों का उपयोग करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि हमारे व्यवहार से किसी को अनुचित कष्ट न पहुँचे। छत के ऊपर से सड़क पर कूड़ा फेंकना, आम रास्ते पर केले या नारंगी के छिलके फेंकना, छड़ी या छाता हिलाते चलना, रेल, धर्मशाला या पार्क में बैठने के स्थान को जूठन से गंदा करना, नल आदि के निकट थूकना या नाक साफ करना, इस प्रकार के कार्य करते समय लोग यह परवाह नहीं करते कि हमारे इन कार्यों से अन्य लोगों को कितना कष्ट होगा। छत पर से फेंका गया कूड़ा, रास्ते पर पटके गए केले के छिलके पर से चलने वाले का पैर फिसल सकता है, छाता या छड़ी हिलाते चलने से किसी की आँख फूट सकती है, टिकट खरीदते समय या सभा मंडप में प्रवेश करते समय धक्का-मुक्की करके आगे धँस

जाने के प्रयत्न में सबकी कठिनाई बढ़ सकती है। सार्वजनिक जगह पर जूठन, कूड़ा या नाक-थूक डालने से और लोगों के चित्त में घृणा और रोष उत्पन्न होता है, क्या ये व्यवहार सभ्योचित हैं ? कोई नहीं चाहता कि ऐसे बेढंगे बरताव का उसे सामना करना पड़े, इसलिए उसे भी चाहिए कि इस प्रकार का बुरा आचरण स्वयं भी न करे।

संसार की हर एक जड़-चेतन वस्तु चाहती है कि मेरे साथ सद्व्यवहार हो। जिसके साथ दुर्व्यवहार करेंगे, वही बदला लेगी। छाते को लापरवांही से पटक देंगे तो जरूरत पड़ने पर उसकी तानें टूटी और कपड़ा फटा पाएँगे। जूते के साथ लापरवाही बरतेंगे तो वह या तो काट लेगा या जल्दी टूट जाएगा। सुई को जहाँ-तहाँ पटक देंगे तो वह पैर में चुभकर अपनी उपेक्षा का बदला लेगी। कपड़े उतारकर जहाँ-तहाँ डाल देंगे तो दोबारा तलाश करने पर वे मैले, सलवट पड़े हुए, दाग-धब्बे युक्त मिलेंगे। यदि आप घर की सब वस्तुओं को सँभालकर रखेंगे तो वे समय पर सेवा करने के लिए हाजिर मिलेंगी। ढूँढ़ने में बहुत-सा समय बरबाद न करना पड़ेगा और न उसे नष्ट-भ्रष्ट दशा में देखना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि अपने समान सबको समझकर यथोचित नीति बरता करेंगे, तो अन्य लोगों से भी आप बहुत अंशों में वैसे ही व्यवहार की आशा कर सकते हैं। स्त्री, पुत्र, भाई-बहन, माता-पिता, मित्र-संबंधी, परिचित-अपरिचित यदि आपसे भलमनसाहत का व्यवहार पाएँगे, तो बदले में उसी प्रकार का बरताव लौटा देंगे।

'वचन का पालन करना' इस पवित्र कर्तव्य को जहाँ तक हो सके पूरा करने का शक्तिभर प्रयत्न करना चाहिए। अकसर देखा जाता है कि मोची, दर्जी, धोबी आदि को कोई काम दिया जाए तो इसका भरोसा नहीं रहता कि वह समय पर काम कर देगा, इसी प्रकार उसे भी यह भरोसा नहीं रहता कि मेरी मजदूरी का पैसा समय

पर मिल जाएगा। फलतः दोनों ही अनिश्चित रहते हैं और झूठी आवश्यकता बताकर तकाजे पर तकाजा जारी रखते हैं। कभी-कभी तो जितने पैसे का काम नहीं होता उससे अधिक कीमत का समय काम कराने वाले महाशय से मजदूरी के पैसे प्राप्त करने में खरच हो जाता है। निमंत्रण देने वाले को यह विश्वास नहीं होता कि निमंत्रित महानुभाव ठीक समय पर उपस्थित होंगे और न निमंत्रित व्यक्ति को यह यकीन होता है कि ठीक समय पर पहुँच जाऊँगा तो भोजन तैयार मिलेगा। यही हाल सभाओं का होता है, सुनने वाले यह नहीं समझते कि ठीक समय पर सभा की कार्यवाही आरंभ होगी और न सभा का आयोजन करने वाले यह इत्मीनान रखते हैं कि सुनने वाले समय पर आएँगे। परस्पर अविश्वास की भावना और लापरवाही की संभावना का ख्याल करके दोनों पक्ष देर करते हैं और इस मराठी घिस-घिस में बहुत-सा बहुमूल्य समय बरबाद हो जाता है। हमारे चरित्र की यह भारी कमी है। अध्यात्मवाद का उपदेश है कि दूसरों को अपने समान समझिए। यदि दूसरों से 'वचन का पालन' कराना चाहते हैं, तो पहले उसका आरंभ अपने ऊपर से कीजिए।

दूसरों को अपने समान समझने का तात्पर्य इतना ही है कि अन्य लोगों के सुख-दुःख को भी उसी दृष्टि से देखिए, मानो वह अपने ऊपर बीत रहा हो। इस प्रकार विचार करने से आत्मभाव विस्तृत होता है, न्याय-बुद्धि जाग्रत होती है और कर्तव्य की प्रेरणा ऊँची उठने लगती है। अपने लिए किस प्रकार का व्यवहार चाहते हैं— इस आवश्यकता को अनुभव करते रहिए और जब कभी ऐसा प्रसंग उपस्थित हो कि अमुक व्यक्ति के साथ किस प्रकार का व्यवहार करें, तब यह देखना चाहिए हम इस व्यक्ति की परिस्थिति में होते और यह व्यक्ति हमारी स्थिति में होता तो इसका क्या कर्तव्य था? जो उसका कर्त्तव्य निर्धारित करना ठीक प्रतीत हो, उसे अपना कर्तव्य मानकर पालन करना आपके लिए उचित एवं आवश्यक है।

यदि आपका बच्चा मेले में खो जाए, तो आप यह आशा करेंगे कि मेले वाले लोग अपना काम हर्ज करके इतनी कृपा करें कि उसे आपके घर तक पहुँचा दें। यदि दूसरे का बालक आप कहीं खोया हुआ पाएँ तो ठीक वैसा ही कार्य करें, अपने निजी काम में थोड़ा हर्ज करके भी उस बालक को यथास्थान पहुँचाने का प्रयत्न करें। यह कार्य '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' के अनुसार पवित्र आध्यात्मिक कर्तव्य होगा। इसी प्रकार दूसरों की सेवा-सहायता के अन्य अवसरों पर जहाँ तक संभव हो अपना कर्तव्यपालन करना न चूकना चाहिए। साथ ही उचित और आवश्यक होने का भी ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि चाहने को तो लोग यहाँ तक चाहते हैं कि कोई ग्रास तोड़कर उनके मुँह में रख जाए, अपने कपड़े-लत्ते उनके सुपुर्द कर जाए, ऐसी इच्छाएँ अनुचित, अनावश्यक एवं अन्यायमूलक हैं, उनको पूरा करने से अकर्मण्यता बढ़ती है, इसलिए ऐसी इच्छाओं को पूरा करने में सहयोग देना ठीक नहीं। अपनी जिस सहायता से दूसरों की ज्ञानवृद्धि होती है, आगे का मार्ग प्रशस्त होता है, अकस्मात आई हुई आपत्ति का निवारण होता है, उनमें निःस्वार्थ भाव से सहायता करना हमारा कर्तव्य है।

जिन लोगों से कुछ सहयोग मिलता है, उसका बदला चुकाना तो आवश्यक है ही, क्योंकि ऋण चुकाए बिना छुटकारा नहीं मिल सकता। यदि किसी ने आपके ऊपर उपकार किया है तो या तो उसी को उसका प्रत्युपकार कीजिए अन्यथा किसी अन्य ऐसे व्यक्ति के साथ में उपकार करके बदला चुकाइए जिससे आपको कोई निजी स्वार्थ न हो। निजी स्वार्थ का तात्पर्य यह है कि अपनी स्त्री को साड़ी खरीदकर उसे देकर उपकारी नहीं कहा सकते, यह तो स्त्री की सेवा का पुरस्कार है, यह उससे कुछ चाहने के लिए दिया हुआ उपहार है। यदि शीत से ठिठुरते हुए किसी अनाथ बालक को एक पुराना कपड़ा देते हैं और उससे बदले की कुछ आशा नहीं करते, तो वह

उपकार है। दूसरों ने आपके ऊपर कुछ उपकार किए हैं और वे उपकारी महानुभाव अब सामने नहीं हैं अथवा प्रत्युपकार नहीं लेते तो उसका बदला किसी निःस्वार्थ उपकार द्वारा चुकाया जा सकता है। दूसरों द्वारा जो उपकार आपके ऊपर हुए हैं, उनका स्मरण कीजिए। ढूँढ़-ढूँढ़कर उनकी एक सूची बनाइए और अपने ऊपर रखे हुए इन भारों को हलका करने के लिए सदैव व्यग्र रहिए। जो भारी है, वह वेग के साथ नीचे को गिरता है, जिसे ऊँचे पर्वतों पर चढ़ना है, उसे अपने बोझों की संख्या जितना भी हो सके कम करनी चाहिए, तभी तो सत्य के ऊर्ध्व मार्ग पर चढ़ना सरल हो सकेगा। कर्ज आज नहीं तो कल आपको चुकाना ही है, बिना उस कर्ज को चुकाए काम चल नहीं सकता, इसलिए आज की समर्थ स्थिति में ही उसे चुकाने का प्रयत्न करिए अन्यथा संभव है भविष्य में शक्तियाँ कम हो जाएँ और उस निर्बल दशा में बलात् वसूल किए जाने पर अधिक कष्ट उठाना पड़े।

दूसरे लोगों के साथ जैसा आप व्यवहार करते हैं, प्रत्यक्षतः ठीक वैसा ही बदला उन व्यक्तियों द्वारा प्राप्त न हो, तो उतावला न होना चाहिए और न भलाई के सिद्धांत पर अविश्वास करना चाहिए। जिसके साथ में उपकार किया गया है, वह बदला देने की स्थिति में न हो तो भी वह अकारथ न जाएगा। संपूर्ण आत्माएँ एक ही परम आत्मा की अणु सत्ताएँ हैं। एक प्याले में पानी भरा हो और उसके किसी भी भाग में नमक या शक्कर डाल दें, तो प्याले का पानी नमकीन या मीठा हो जाएगा। इसी प्रकार यदि एक आत्मा के प्रति जो व्यवहार किया गया है, वह सामूहिक आत्मसत्ता—परम आत्मा को प्रभावित करता है। वह व्यक्ति यदि न रहे तो भी परमात्मा तो सदैव मौजूद रहता है और वह उसके लिए वैसा ही फल उपस्थित करता है। संपूर्ण पृथ्वी एक है, पर अपने खेत में जिसने जो बोया है, उसे वही अनाज मिल जाता है। परमात्मा की सत्ता में आपने उपकार

के जो बीज बोए हैं, वे अन्य घटना को लेकर वैसा ही फल उपस्थित करते हैं। दयावान और भले मनुष्यों के साथ अपरिचित मनुष्य भी उचित व्यवहार करते हैं, कारण यह है कि उनके चेहरे पर जो भलमनसाहत की रेखाएँ खिंची रहती हैं, उनसे अन्य व्यक्तियों को अनायास ही आकर्षित होना पड़ता है। दो-चार अपवादों को छोड़कर अधिकतर भले आदमियों को परिचित और अपरिचितों से भलमनसाहत का व्यवहार ही प्राप्त होता है।

पाठक पिछली पंक्तियों में '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' सिद्धांत के दो स्वरूप देख चुके हैं। एक यह कि दूसरों के सुख-दुःख में अपना सुख-दुःख सम्मिश्रित करना। दूसरा यह कि जैसा व्यवहार होने की आशा अन्य लोगों से करते हैं वैसा ही स्वयं भी दूसरों के साथ करना। तीसरा स्वरूप एक और भी है, वह यह कि वास्तविकता को समझना और तदनुसार आसानी से उनका हल ढूँढ़ निकालना।

जिन लोगों में साधारणतः कोई मन मुटाव या संघर्ष नहीं होना चाहिए, उनमें भी अकसर मनोमालिन्य पाया जाता है। दोनों पक्ष यह चाहते हैं कि झगड़ा न रहे और मेलजोल से सब काम चलता रहे, फिर भी झड़पें होती रहती हैं, एक दूसरे पर दोषारोपण का सिलसिला चलता रहता है। कारण यह है कि दूसरे का दृष्टिकोण समझने में गलती की जाती है। लोग एक भारी भूल यह करते हैं कि अपने जैसे स्वभाव, विचार, ज्ञान, इच्छा, रुचि, संस्कार का दूसरों को मानकर आशाएँ बाँधते हैं, लेकिन हर आदमी का स्वभाव, विचार, संस्कार, ज्ञान, विवेक पृथक् होता है, उनके बीच जमीन-आसमान का गहरा अंतर देखा जाता है। ईश्वर ने कोई दो व्यक्ति एक समान नहीं बनाए हैं। हर एक में अपना निजी व्यक्तित्व, निजी स्वभाव और निजी ज्ञान होता है, जिसका दायरा जितना है, वह उसी मर्यादा के अनुसार इच्छा और रुचि रखता है। अपने ज्ञान की मर्यादा के अनुसार ही प्रभाव ग्रहण करता है। यदि इस विभिन्नता के तथ्य को भली प्रकार समझ

लिया, तो बहुत-सी गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं। अपने ज्ञान एवं स्वभाव का दूसरे को समझ लेने से उसके कार्य और विचार मनमर्जी के न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है या दुर्भावों की जड़ जमती है। किंतु यदि सब धान बाईस पसेरी मान लेने की गलती न की जाए तो आधे से अधिक लड़ाई-झगड़े शांत हो सकते हैं।

जिनके स्वार्थों में विरोध है, जिनसे एक दूसरे को नष्ट करके स्वयं प्रभुत्व जमाने की इच्छाएँ प्रबल हो रही हैं, उनका मामला दूसरी प्रकार का है, पर जिनमें स्नेह और मनमुटाव साथ-साथ रहते हैं, अनिष्ट न चाहते हुए भी कुढ़ते रहते हैं, मन में वास्तविक, स्वाभाविक एवं न मिट सकने वाला संघर्ष नहीं होता वरन भ्रमजन्य धारणाओं के मनोभावों को ठीक तरह न समझने के कारण एक गलतफहमी उपज पड़ती है। जिनके हृदय एक होने चाहिए थे, उनमें कपट और असंतोष बढ़ने लगता है। आप अपने ज्ञान, स्वभाव और संस्कार के आधार पर हर बात को सोचते हैं, उसी प्रकार दूसरे भी अपने ढंग से सोचते हैं। जैसे अपने स्वभाव, संस्कार और विवेक द्वारा आप कुछ इच्छा-आशा करते हैं, वैसे ही दूसरे लोग भी अपनी योग्यताओं के अनुसार स्वतंत्र रीति से इच्छा, आशा करते हैं। **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** सिद्धांत की प्रतिध्वनि है कि अपने गज से सबको मत नापिए, वरन उसकी स्वतंत्र मनःस्थिति को नापकर तब कुछ धारणा बनाइए, उसी के अनुसार उतनी ही मात्रा में उससे आशा कीजिए।

किसी मनुष्य की मानसिक धारा समझने के लिए अपने को उसकी स्थिति में रखकर तब फिर विचार करने का प्रयत्न किया कीजिए। यह अभ्यास अधिक दिनों में होता है। अपने आप को बिलकुल भुला दीजिए, इसका जरा भी स्मरण मत आने दीजिए कि हमारी भीतरी और बाहरी स्थिति क्या है? जिस-जिस आदमी की मनोदशा जानना चाहते हैं, अपने को उसकी स्थिति में ले जाइए,

ज्ञान, स्वभाव और संस्कार जो उसके हैं, उन्हें ही अपने ऊपर आरोपित कर लीजिए। नाटकों में अभिनय करने वाले पात्र नकल बनाने की पूरी-पूरी कोशिश करते हैं, वे वेशभूषा और बोलचाल की नकल करते हैं, आपको मानसिक दशा की नकल करनी है, यह नकल इतनी स्वच्छ होनी चाहिए कि आप करीब-करीब असलियत तक पहुँच जाएँ। अनायास अकारण ऐसे अभ्यास किया कीजिए। जब आपका चित्त शांत हो और फुरसत का वक्त हो तो पास में दिखाई पड़ने वाले किसी आदमी की स्थिति में पहुँचने का अभ्यास करिए। तब आप देखेंगे कि वह आदमी जो कार्य कर रहा है, वह अपनी दृष्टि से ठीक कर रहा है। मन की परख करने और विभिन्न अंत:करणों में जो पृथकता विराज रही है, उसे समझने में जैसे-जैसे आप सफल होते जाएँगे वैसे-ही-वैसे संसार का वास्तविक चित्र समझने में सफल होने लगेंगे।

दूसरे की स्थिति में पहुँचकर आप यह अनुभव कर सकते हैं कि अपनी वर्तमान स्थिति के अनुसार वह क्या सोचता है? क्या चाहता है? और क्यों असंतुष्ट है? रोग का निदान हो जाने पर उसका इलाज सरल होता है। इसी प्रकार अपने असंतुष्ट प्रियजन की मानसिक उलझन का पता चल जाने पर उसका सुलझाना भी कठिन नहीं रहता। मनमुटाव का वास्तविक कारण एक-चौथाई से भी कम होता है और तीन-चौथाई भाग भ्रम का रहता है। आप उसकी स्थिति को नहीं समझते, वह आपकी स्थिति को नहीं समझता। दोनों अपने पैमाने से दूसरे को नापते हैं। जिस बात में दूसरा पक्ष जरा भी दुर्भावना नहीं रखता, वह बात भी अपनी मनमरजी की न होने के कारण दुर्भावपूर्ण दिखाई पड़ती है। दोनों पक्ष अपने-अपने भ्रम को बढ़ाते हैं, गुत्थी उलझती है, तिल का ताड़ बन जाता है, भीतर-ही-भीतर नाना प्रकार के आरोप उठते हैं और असंतुष्ट मन लँगड़े-लूले तर्कों के आधार पर उन आरोपों की पुष्टि करता चला जाता है। इस

प्रकार काल्पनिक दोषों का जमघट दूसरे व्यक्ति में दिखाई पड़ने लगता है। यह काल्पनिक रचना कभी-कभी तो बिलकुल वे बुनियाद होती है। कभी उसमें थोड़ा बहुत तथ्य भी होता है, पर वह तथ्य इतना स्वल्प और नगण्य होता है कि यह देखकर आश्चर्य करना पड़ता है कि इतने छोटे-से कारण को लेकर क्योंकर इतना बड़ा विष-वृक्ष उत्पन्न हो गया।

आपने देखा होगा कि कई व्यक्ति बच्चों के, बुड्ढ़ों के, बुद्धिमानों के साथ बिलकुल घुल-मिल जाते हैं। जिनके साथ वे बातें करते हैं प्रतीत होता है कि यह इसी श्रेणी के हैं। सभी श्रेणी के लोग उनसे खुश रहते हैं और सभी उन्हें प्यार करते हैं। कारण यह है कि वे दूसरों की मानसिक मर्यादा देखकर उसी दायरे में रहते हैं और जो कुछ प्रयोजन सिद्ध करना होता है, उसके लिए मर्यादा के अंदर ही बात-चीत करके प्रभाव डालते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति सदैव सफल रहते हैं और उन्हें भ्रमजन्य उलझनों के कारण उत्पन्न होने वाले अनावश्यक क्लेशों का सामना नहीं करना पड़ता। यह बहुत ही उत्तम गुण है। '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' की शिक्षा इस गुण को विकसित करने की सलाह देती है। आप अपनी भिन्नता को देखिए, दूसरों की अपेक्षा आपके मस्तिष्क में बहुत भारी भिन्नता है, इसी प्रकार अन्य लोगों में भी भिन्नता रहती है। उस भिन्नता के कारण अपनी-अपनी इच्छा और रुचि अलग होती है। इस तथ्य को जो जितनी उत्तमता से जान लेगा, वह दूसरों के हृदय में अपने लिए अच्छा स्थान कायम करने में सफल होगा। आप भी इसी मार्ग पर चलिए, अपने प्रियजनों और ग्राहकों की मनोभूमि परखिए, उसी मर्यादा में रहकर उनका भ्रम-निवारण कीजिए और जो कुछ आप चाहते हैं, उसे समझाने का प्रयत्न कीजिए। सिद्धांतवादी को सिद्धांतों की दुहाई देकर, कंजूस को लोभ दिखाकर, अहंकारी को प्रतिष्ठा प्राप्ति की बात बताकर आकर्षित किया जा सकता है। हर एक

कार्य में अनेक पहलू और प्रयोजन होते हैं, आप प्रधान रूप से अपनी बात का वह पहलू उसके सामने उपस्थित कीजिए, जिसे उसकी मन:स्थिति, इच्छा और रुचि आसानी से ग्रहण कर सके। सत्य तक पहुँचने और भ्रमजन्य क्लेशों का निवारण करने का यह बहुत ही उत्तम तरीका है कि दूसरों की मानसिक मर्यादा समझने की अपनी योग्यता बढ़ाई जाए।

हर मनुष्य की स्वाभाविक भिन्नता पर विचार करने से पता चलता है कि पूर्ण रूप से एक समान गुण किन्हीं में नहीं पाए जा सकते, थोड़ा-बहुत अंतर रहता है और उसका रहना अनिवार्य है। पृथकता में ही सृष्टि का सौंदर्य है, अन्यथा यदि सब लोगों की भीतरी-बाहरी बनावट एक समान होती, तो यह विश्व बड़ा नीरस और मुरदापन लिए हुए होता। पृथकता ईश्वरप्रदत्त है, इसमें मनुष्य का वश नहीं चलता, इसलिए आप इस बात को भली प्रकार हृदयंगम कर लीजिए कि दूसरों को पूर्ण रूप से अपनी इच्छानुकूल नहीं बनाया जा सकता। स्नेह कायम रखने के लिए सहयोग और समझौते की जरूरत होती है, त्रुटियों को सहने, भूलों को बरदाश्त करने, रुचि-भिन्नता का ध्यान रखने से ही मैत्री कायम रह सकती है। यदि ऐसा सोचा जाए कि दूसरा तिल-तिल हमारी आज्ञा का पालन करेगा, अपनी निजी विशेषताओं को भुलाकर पूर्ण रूप से अपने साथ आत्मसात हो जाएगा, तो यह आशा फलवती न होगी। आकाश-कुसुम की याचना करने वालों को निराशा का सामना करना पड़ता है। जो असंभव मनसूबे बाँधता है, उसे भी निराशाजन्य खिन्नता का सामना करना पड़ता है।

जिनमें आपके लिए हितकामना हो, जो कपटी या घातक न हो, जिनमें समझदारी और भलमनसाहत हो, जिनके विचार और कार्यों में बहुत कुछ समता हो, उन्हें अपना मित्र बना लीजिए और मित्रता को कायम रखने के लिए एक दूसरे को सहन करने की नीति पर

चलते रहिए। यदि आपकी पत्नी ऐसे रीति-रिवाजों में विश्वास रखती है, जो आपको पसंद नहीं आते तो अनावश्यक संघर्ष मोल मत लीजिए। पति परमेश्वर की आज्ञा नहीं मानती, मूर्ख और जिद्दी है, घर की हानि को नहीं देखती—इस प्रकार के दोषारोपण करके अपने और उसके मन में अग्नि सुलगाना उचित न होगा। यदि शांतिपूर्वक समझाने से उसकी मनोभूमि को बदला नहीं जा सका, तो दबाव और जबरदस्ती, मैत्री कायम रखने का तरीका नहीं है। कुटुंब, परिवार, सगे-संबंधी, ग्राहक-अनुग्राहक सभी की विचार-भिन्नता से समझौता करके आप इस दुनिया में अपना काम चला सकते हैं। जिसको अपनी मरजी का नहीं पाया उसी पर बरस पड़े, यह तरीका गलत है, दुखदाई है, दुश्मनी बढ़ाने वाला है और ऐसा है जिसके कारण हर दिशा में निराशा एवं असफलता उत्पन्न होती है।

मित्र मंडली में अपने विचार और आचरणों का प्रवेश किया कीजिए और जितना हो सके अपनी ओर झुकाने के प्रयत्न में रहा कीजिए, किंतु ऐसी आशा मत रखिए कि वे अपनी निजी भिन्नता को बिलकुल मिटा डालें। अधिक सहयोग प्राप्त कीजिए और अधिक सहयोग दीजिए, उदारता और सहनशीलता के आधार पर मैत्री को दृढ़ बनाइए। समझौते की नीति से एक दूसरे की त्रुटियाँ सहन करते चलिए, इस प्रकार आप संसार में अधिक लोगों का स्नेह-सद्भाव प्राप्त कर उसे कायम रख सकेंगे।

□

दूसरा पाठ

तीनों ओर ध्यान रखिए !

यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है। सत्, रज, तम तीनों गुणों को मिलाकर संसार का निर्माण हुआ है। हर प्राणी में तीनों गुणों का समावेश है। न्यूनाधिक मात्रा में इन गुणों की स्थिति होने के कारण स्वभावों में भिन्नता होती है। एक दूसरे से भिन्न रुचि रखने का कारण इन तीनों गुणों की मात्रा में हेर-फेर होता है। यह मात्रा प्रयत्नों द्वारा घटती-बढ़ती रहती है, जिस तत्त्व की ओर कार्य और विचारों की प्रगति होती है, वह बढ़ने लगता है, जिस ओर उपेक्षा की जाती है, वह घट जाता है। तो भी हर शरीरधारी में कम या अधिक तीनों ही गुण विद्यमान रहते हैं। जिनमें जो तत्त्व अधिक होता है, उन्हें उस प्रधानता के कारण उसी गुण का कहा जाता है। जिसमें तम् अधिक है उन्हें तामसिक स्वभाव का, जिनमें सत् अधिक है उन्हें सात्विक स्वभाव का और जिनमें रज् अधिक है उन्हें राजसी स्वभाव का कहा जाता है। तीन प्रकृतियों के मनुष्य देखे जाते हैं, कोई भलाई, ईमानदारी या सचाई में रुचि रखते हैं, कोई ऐश-आराम पसंद करते हैं, किन्हीं का झुकाव दुष्कर्मों की ओर होता है। प्रधान रुचि तो एक ही होती है, पर अन्य दोनों का सर्वथा अभाव नहीं होता, वे भी किसी-न-किसी अंश में स्थित रहते हैं। एक ही मनुष्य के विचार तथा कार्यों में कभी-कभी जमीन-आसमान का अंतर आ जाता है। यह भी उन गुणों के परिवर्तन के कारण ही होता है।

धर्मशास्त्र के अधिकांश उपदेश भलाई और ईमानदारी की ओर चलने को कहते हैं, दया, प्रेम, सहानुभूति, त्याग, उदारता का उपदेश करते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य में तामसिक वृत्तियाँ अधिक होती हैं, अधिक लोग तामसी स्वभाव के पाए जाते हैं, निकृष्ट श्रेणी का होने के कारण 'तम' स्वभावतः आकर्षक होता है। निचाई की ओर पानी अपने आप बह चलता है, नीच कार्यों की ओर

प्रवृत्तियाँ भी आसानी से झुक जाती हैं। इन बातों को ध्यान में रखकर धर्मशास्त्र ने सत् तत्त्व की ओर बढ़ने का उपदेश दिया है। बुराई को कम करने के लिए भलाई का और असत्य को कम करने के लिए सत्य का उपदेश दिया गया है। जहाँ बुराई अधिक है उसको दूर करने के लिए अधिक भलाई की जरूरत है, इसी कारण शास्त्रों का प्रधान उपदेश सत् तत्त्व की वृद्धि के लिए है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि सर्वसाधारण का व्यावहारिक कार्य इस एक ही मार्ग पर चलने से पूरा हो सकता है। त्रिगुणात्मक सृष्टि में तीन प्रकार का व्यवहार रखने से ही काम चलेगा। आत्मा की शुद्धि करके उसे ईश्वर तक पहुँचने के योग्य बनने के लिए आंतरिक विचारधारा स्वच्छ, पवित्र, निष्पाप एवं सात्विक होनी चाहिए। शरीर को नीरोग, दीर्घजीवी, प्रफुल्ल एवं क्रियाशील रखने के लिए राजसिक सुखों की आवश्यकता है। दुष्ट, दुराचारी, आततायी एवं पर-पीड़कों को नियंत्रण में रखने, उनसे आत्मरक्षा करने के लिए तमोगुण का उपयोग करना पड़ता है। केवल सत् तत्त्व के द्वारा आततायियों से आत्मरक्षा नहीं हो सकती। जब असुरों के उत्पातों से बचाव का कोई उपाय न रहा, तो लाचार होकर विश्वामित्र को दशरथ के पास जाना पड़ा और राम-लक्ष्मण को लाकर ताड़का आदि का वध कराना पड़ा। रावण ने असंख्य ऋषियों को मार-मारकर जब उनकी हड्डियों के पहाड़ जमा कर दिए, तो राम के पैने बाणों द्वारा ही उनका अंत किया जा सका। समुद्र जब विनय द्वारा न माना तो लक्ष्मण को लाल-पीली आँखें करनी पड़ीं। परशुराम जी राम के विवाह में विघ्न खड़ा करने पर तुले हुए थे, पर जब उन्हें पता चला कि कड़ा मुकाबला मौजूद है, तो उनने अपना रुख बदल दिया।

प्रार्थना, दया, विनय, भलमनसाहत बहुत अच्छी वस्तु हैं। इनसे वे लोग सहज ही झुक जाते हैं, जिनमें कुछ अधिक मात्रा में सत् गुण मौजूद है, परंतु सब जगह उपर्युक्त तत्त्वों के आधार पर सफलता नहीं मिल सकती। दुष्ट स्वभाव के लोग इनकी जरा भी परवाह नहीं

करते तथा विनय करने वाले को दबा हुआ समझकर और भी अधिक उद्दंडता करते हैं। ऐसी दशा में काँटे से काँटा निकालना पड़ता है, कूटनीति से काम लेना पड़ता है, शठ के प्रति शठता का आचरण करना पड़ता है। तमोगुण को दंड, भय या लोभ से झुकाया जा सकता है। लोभ देना न तो सदैव संभव है और न उचित। एक बार रिश्वत देकर उनसे कर्तव्यपालन करा लिया जाए तो आगे के लिए उनकी दाढ़ लपकती है, हराम मुँह लग जाने पर सदैव उसी की इच्छा किया करते हैं। ऐसे अनेक व्यक्तियों को आप जानते होंगे, जो केवल कर्तव्यपालन के लिए रिश्वत माँगते हैं। ऐसे लोगों के मार्ग में यदि बाधा उपस्थित न की जाए, तो वे और भी अधिक कठोर होते जाते हैं, अपनी तृष्णा को अत्यंत उग्र गति से बढ़ाते हुए लोभ-लालसा से घोर अनीति पर उतारू हो जाते हैं, जैसे-जैसे उनकी लोभ-पिपासा का पोषण होता है, वैसे-ही-वैसे वह और भी उग्र रूप में प्रकट होता है। अग्नि में घृत डालने से वह और अधिक भड़कती है। तामसिक वृत्ति वाले को लोभ द्वारा तृप्त नहीं किया जा सकता, उसकी माँग दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगती है।

कोई अत्यंत पेचीदा, नाजुक एवं असाधारण अवसर आने पर लोभ देकर दुष्ट की दुष्टता से छुटकारा प्राप्त करना ठीक हो सकता है, पर सामान्यत: दंड और भय ही उसे सही मार्ग पर लाने के लिए उचित उपाय हैं। अनाड़ी आदमी जिसे सत्पुरुषों के संगति में रहने का नहीं, वरन मूर्ख और दुर्जनों के संसर्ग में रहने का अवसर मिला है, वह अंत:करण के विकसित न होने के कारण भलमनसाहत से प्रभावित होकर अपनी दुष्टवृत्ति को त्यागने के लिए तैयार नहीं होता। भय से जब उसके होश उड़ने लगते हैं या दंड की करारी चोट पीठ पर पड़ती है, तभी उसे 'अक्ल' आती है और तभी कुछ होश की बात करता है, अन्यथा अपने नशे के खुमार में किसी को कुछ गिनता ही नहीं।

आदर्श धर्म की शिक्षा यह है कि केवल सत् तत्त्व की आराधना करो। भीतर और बाहर से, अपने से और पराये से अहिंसा, क्षमा

आदि का व्यवहार करो। यह ऊँची शिक्षा, ऊँची कक्षा के विद्यार्थियों के लिए है। आरंभिक या माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों का इनमें गुजारा नहीं हो सकता। वे इसे ग्रहण नहीं कर सकते और न कुछ लाभ ही उठा सकते हैं। आज अनेक लोग ऐसा कहते सुने जाते हैं कि 'धर्म' तो साधु-संतों, विरक्त-वैरागियों के पालन करने योग्य वस्तु है, गृहस्थी वालों से वह नहीं सध सकता, लेकिन बात ऐसी नहीं है, जैसे-जैसे आत्मिक स्थिति ऊँची होती जाती है, वैसे-ही-वैसे धर्म की मर्यादा भी बढ़ती जाती है। सिंह और गाय जिनके निकट पहुँचकर एक घाट पर पानी पिएँ, ऐसी स्थिति प्राप्त करना सब किसी के लिए संभव नहीं है। जब इतना उच्च कोटि का आत्मिक बल तो है नहीं, जिसके द्वारा दृष्टि मात्र से अनाचारी परास्त हो जाएँ, तब उसी पद्धति से जीवनक्रम चलाने के लिए कहना बुद्धिमत्ता न होगी। जिसमें सिंह को परास्त करने वाला आत्मतेज नहीं है, उसे अन्य साधनों द्वारा सिंह से अपने को बचाना चाहिए। आत्मशक्ति तो है नहीं, अन्य साधनों का उपयोग किया नहीं ऐसी दशा में भारी हानि की संभावना रहती है। एक बार जिसे ऐसी हानि सहनी पड़ी या दूसरों को सहते देखा तो बस फिर उसका विश्वास धर्म पर नहीं जमता है। वह समझता है कि वह अव्यावहारिक है, काल्पनिक है, निस्सार है और कोरा आदर्शवाद है, इस मार्ग पर चलकर दैनिक समस्याओं को, उलझनों को नहीं सुलझाया जा सकता।

इन सब कठिनाईयों के कारण धर्मग्रंथ अब कहने-सुनने की वस्तु रह गए हैं। कथा कहकर पंडित जी समझते हैं कि यजमान ने धर्म-लाभ कर लिया। यजमान समझता है कि सुनने में कुछ घंटे का समय तथा दक्षिणा में कुछ देकर मैंने स्वर्ग-द्वार में प्रवेश पा लिया। शास्त्रों की आज्ञाओं का मर्म समझने और उन्हें व्यावहारिक रूप से जीवन में उतारने का प्रयत्न बहुत कम लोग करते हैं, क्योंकि अब आमतौर से यह समझा जाने लगा है कि यह आदर्शवाद की ऊँची

सीढ़ी है, साधारण लोग इस तक नहीं पहुँच सकते। पहुँच भी जाएँ तो अधिक समय तक दृढ़तापूर्वक जमे नहीं रह सकते।

जैसा कि समझा जाता है, वास्तव में धर्म का पालन उतना दुरुह नहीं है। अधिकांश में उच्च आदर्शों की शिक्षाएँ इसलिए दी गई हैं कि इधर आकर्षण कम होने और परिश्रम अधिक पड़ने के कारण लोगों का झुकाव अधिक नहीं होता। इसलिए बार-बार बलपूर्वक आदेश करके नीचे से ऊपर को प्रोत्साहित किया जाए। व्यावहारिक और वास्तविक दृष्टि से देखा जाए, तो त्रिगुणमयी सृष्टि में त्रिगुणमय आचरण करने की पूरी-पूरी आवश्यकता है, बिना उस आवश्यकता की पूर्ति किए सांसारिक एवं सामाजिक जीवन सुचारु रूप से चल नहीं सकता। लिखे हुए का तात्पर्य समझने में उसका व्यावहारिक उदाहरण देखना पड़ता है, कानून की किसी धारा का ठीक-ठीक आशय समझने के लिए हाईकोर्ट के फैसलों की नजीरें देखनी पड़ती हैं कि कानून के विशेषज्ञ जजों ने उस धारा का क्या अर्थ निकाला है और उसे किस रूप में प्रयोग किया है ? धर्म शास्त्रों की आज्ञाओं का व्यवहारिक रूप क्या है ? यह परखने के लिए हमें धार्मिक महापुरुषों के, अवतारी देवताओं के आचरण को टटोलना पड़ेगा। भगवान राम को लीजिए, वे पिता की आज्ञापालन के लिए अपने को घोर आपत्तियों में डालकर वन को जाते हैं, विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के लिए अपने ऊपर जोखिम लेते हैं, केकयी के लिए भी दुर्भाव नहीं लाते, ये उनके आध्यात्मिक कार्य हैं। भरत के लिए, लक्ष्मण के लिए, हनुमान के लिए, जटायु के लिए, विभीषण के लिए उनका व्यवहार प्रेम से परिपूर्ण है। पेड़ के पीछे छिपकर बालि को मारने की कूटनीति भी वे चलते हैं और राक्षसों को दंड देने के लिए खून की नदियाँ भी बहा देते हैं। भगवान कृष्ण को लीजिए, वे योगिराज की पदवी से विभूषित हैं। योग में उनकी बहुत ही ऊँची स्थिति है, गीता जैसे सर्वश्रेष्ठ अध्यात्म शास्त्र के उपदेष्टा हैं, यह उनका अध्यात्मवाद है। गोपियों

से, गोपों से, विदुर से, अर्जुन से, सुदामा से, अन्य भक्तों से दिल खोलकर प्रेम करते हैं, साथ ही महाभारत में अठारह अक्षौहिणी सेनाओं का वध कराते हैं, बालकपन से ही दुष्टों का ध्वंस आरंभ करते हैं। कूटनीति तो इनकी इतनी विस्तृत है कि उस पर एक स्वतंत्र विशद् ग्रंथ लिखा जा सकता है। राम और कृष्ण दोनों ही हिंदू जाति के महान अवतार हैं। उनमें ईश्वरीय सत्य बहुत अधिक है, राजसिक जीवन भी दोनों का रहा है, आनंद उल्लास का मिठास भी उनके जीवन में है, साथ ही घोर, कठोर एवं भयंकर कृत्यों की मात्रा भी कम नहीं है।

हिंदू धर्म में जितने भी अवतार हुए हैं, उनमें से सभी का कार्यक्रम त्रिगुणात्मक है। लोकहित के लिए उन्होंने तीनो गुणों से युक्त कार्य किए हैं। सत्य, अहिंसा का आचरण तो प्रधान है ही, उस ओर तो खासतौर से ध्यान दिया ही जाना चाहिए, किंतु यह भी आवश्यक है कि रज और तम का यथोचित उपयोग करके आत्मरक्षा एवं लोक-कल्याण की साधना की जाए। हर चीज अपने स्थान पर उपयोगी है, कमल पुष्प अपने स्थान पर बहुत अच्छा है, पर नागफनी का कटीला पौधा भी निरर्थक नहीं है, उसकी आवश्यकता और उपयोगिता भी साधारण नहीं है।

त्रिवेणी का संगम होने के कारण प्रयाग को तीर्थराज का पद मिला है। शरीर में वात, पित्त, कफ तीनों की स्थिति समान होती है तो स्वास्थ्य कायम रहता है। तीनों पृथक स्वभाव के देवता—ब्रह्मा, विष्णु, महेश मिलकर सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और विनाश की व्यवस्था करते हैं। ईश्वर, जीव, प्रकृति के समन्वय से चैतन्य जगत क्रियाशील हो रहा है। इस विश्व को उचित स्थिति में रखने के लिए तीन प्रधान तत्त्वों की यथोचित मात्रा का रखना आवश्यक है। अकेला नमकीन या अकेला मीठा ही खाते रहें, तो चित्त ऊब जाएगा, रसों को बदलकर सेवन करने से भोजन में जो स्वाद आता है, केवल एक रस पर निर्भर रहने से वह नहीं मिल सकता।

लौट-फेर-कर अपनी-अपनी शैली से सभी धर्मों ने त्रिगुणात्मक धर्म का उपदेश दिया है। अपनी शैली के अनुसार हम उन्हीं तीन तत्त्वों को सत्य, प्रेम, न्याय इन तीन नामों से उपस्थित करेंगे। पूर्वकाल में ऋषियों ने उसे योग-यज्ञ-तप के नाम से, ज्ञान-भक्ति-कर्म के नाम से, ऋग्-यजु-साम के नाम से, सत्-चित्-आनंद के नाम से, सत्यं-शिवं-सुंदरम् के नाम से पुकारा है। आज जनता की जो मानसिक स्थिति है और जिस भाषा का उपयोग होता है, उसके अनुसार उन तीन तथ्यों को सत्य-प्रेम-न्याय नाम देना अधिक उपयोगी दिखाई देता है। आत्मा, हृदय और मस्तिष्क—इन तीनों की जो माँग है, उसे सत्, रज, तम के नाम से कहा जाता है, इन्हें ही सत्य, प्रेम, न्याय इन नामों से भी पहचान सकते हैं।

यह अनादि सत् धर्म एक है, उसका विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण किया है। मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं, योगशास्त्र ने यम-नियमों में उनका विभाजन किया है। किसी ने उनकी संख्या पाँच, किसी ने आठ, किसी ने ग्यारह, किसी ने सत्रह बताई है। संख्याओं का यह वर्गीकरण उपदेष्टाओं की अपनी शैली है, वास्तव में तथ्य एक ही है। एक गोले का स्वरूप समझाने के लिए कोई कहता है कि आगा-पीछा ये दो भाग हैं, कोई कहता है आगा, पीछा, नीचे, ऊपर—ये चार भाग होने चाहिए, किसी को दसों दिशाओं के अनुसार दस भाग करना पसंद है। गोले का स्वरूप समझाने के लिए, समझाने वाला उसके दो, चार, दस चाहे जितने विभाग नियत करके शिक्षा दे, पर इससे उस गोले की स्थिति में कुछ भी अंतर नहीं आता, वह एक था और आगे भी एक ही रहेगा। जिस पद्धति का अवलंबन करने से जीवन सुखी, शांत और उन्नतिशील बनता है, उसे 'धर्म' कहते हैं। यह सदा से एक है और आगे भी एक ही रहेगा, समझने और समझाने में सुविधा हो, इसलिए उस एक ही अखंड वस्तु का त्रिविध वर्गीकरण करना हमें ठीक जँचा है, इसलिए सत्य, प्रेम, न्याय के नाम से उसकी त्रिविध व्याख्या की जा रही है।

सतोगुण आत्मोन्नति का प्रधान साधन है। यह आत्मा को ईश्वर तक पहुँचाने वाला है, आत्मबल बढ़ाने वाला और आंतरिक शांति की सृष्टि करने वाला है। अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए सत् तत्त्व को अधिकाधिक मात्रा में बढ़ाना चाहिए। निजी दृष्टिकोण को परिमार्जित करना, आत्मा को पवित्र करना, आत्मनिर्भर होना, नश्वर वस्तुओं पर मोहित न होना, आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना, शरीरभाव को भूलकर आत्मभाव में जाग्रत रहना—यह सत् की उपासना है, इससे अंत:करण में बड़ी शीतल शांति विराजती रहती है, कठिन-से-कठिन परिस्थिति आने पर भी विचलित होने का अवसर नहीं आता। शोक, चिंता, बेचैनी, व्याकुलता की परेशानी उसे नहीं उठानी पड़ती, तूफानी समुद्र में रहने वाले सुदृढ़ पर्वत की भाँति इस अशांत और हाहाकारी संसार में स्थिर चित्त से खड़ा रहता है और बुरी-से-बुरी घड़ी में भी मधुर-मधुर मुस्कराता रहता है।

रजोगुण से सांसारिक सुख, शांति, वैभव, मैत्री, आदर, भोग, ऐश्वर्य मिलता है। प्रेम रजोगुण का प्रतिनिधि है। सेवा, सहायता, स्नेह, भलमनसाहत, उदारता का व्यवहार करने से बदले में दूसरों का हार्दिक रस प्राप्त होता है। गौ के शरीर से निकाला हुआ गोरस दूध हमें शक्ति और तृप्ति प्रदान करता है, मनुष्य की अंतरात्मा से निकला हुआ प्रेमरस जीवन की मुरझाई हुई डालियों में नवजीवन का संचार कर देता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, जीवनक्रम में उसका सुख-दु:ख बहुत कुछ दूसरों पर निर्भर रहता है। संगी-साथियों के भले-बुरे व्यवहार से भौतिक आनंद में कमी-बेशी हुआ करती है। हर एक यह इच्छा करता है कि अन्य व्यक्तियों का सहयोग मुझे प्राप्त हो, उनका व्यवहार मेरे मनोनुकूल हो, ऐसा हो सकता है और अवश्य हो सकता है, बशर्ते कि अपने मन में प्रेम की भावनाएँ भर ली जाएँ। प्रेम एक ऐसा अदृश्य आकर्षण है, जिसके द्वारा कठोर हृदयों को जीत लेना भी आसान होता है। स्वेच्छा सहयोग से अधिक मिलता है और जो मिलता है, उसमें अधिक आनंद होता

है। अपहरण और अन्याय से भी सुख-सामिग्री जुटाई तो जा सकती है, पर वह बेइज्जत होती है, जिससे लिया गया है, उसकी आहें और दुर्भावनाएँ भोग का सारा मजा मिट्टी कर देती हैं। उसे भोगने वाला दिल किसी अज्ञात आशंका से धक-पक करता रहता है। संसार में सुखी, प्रफुल्ल एवं आनंदमय जीवन बिताने का यह अचूक मंत्र है कि प्रेम-भावना को हृदय में पर्याप्त स्थान दिया जाए। रजोगुण का स्थान हृदय है, हृदय की प्यास है—प्रेम। यह अभिन्न संबंध एक दूसरे की पूर्ति के लिए है। जो प्रेम करना जानता है, उसे ही केवल इस संसार के रजोगुण का, सुख-संपत्ति का आनंद मिलेगा।

तमोगुण यद्यपि स्वयं अपने अंदर कोई देने योग्य तत्त्व नहीं धारण किए हुए है, तो भी अनीति का निवारण और आक्रमण से आत्मरक्षा की शक्ति उसमें है। स्वभावतः विष मनुष्य के लिए कुछ उपयोगी वस्तु नहीं है, स्वस्थ दशा में उसका कोई विशेष उपयोग नहीं है, परंतु यदि शरीर में गठिया आदि कोई विषैला रोग हो जाए तो उसे निवारण करने के लिए विषगर्भ तैलों की जरूरत पड़ती है। यदि दुष्ट-दुराचारी, अन्यायी, अत्याचारियों से पाला न पड़े, भले और सज्जन पुरुषों का ही साथ रहे, तो क्रोध करने और तमोगुण प्रकट करने की कुछ भी जरूरत नहीं है। न्याय का उपयोग इतना ही है कि अन्याय न होने दिया जाए, ज्यादती, बेईमानी, बेइंसाफी को रोका जाए। यदि अन्याय नहीं होता है, तो न्याय की कोई जरूरत नहीं है। तमोगुण अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मस्तिष्क में उसके लिए अधिक स्थान छोड़ देने से अपने लिए हानि होती है। विष को खुला हुआ घर में पड़ा रहने देने से अनिष्ट की संभावना अधिक है। इसलिए बुद्धिमान लोग जहर को दूर रखते हैं, खुला हुआ जहाँ-तहाँ नहीं पड़ा रहने देते, जब जरूरत पड़ती है तभी दवा के रूप में उसकी नियत मात्रा का उपयोग करते हैं। तमोगुण की भी आवश्यकता है, वह यदि साधारण अवसर पर विष है, तो किसी विशेष अवसर पर अमृत के समान लाभदायक सिद्ध होता है। अपने दैनिक कार्यक्रम में तमोगुण

का उपयोग करेंगे तो बने हुए काम बिगड़ जाएँगे, विरोधियों की संख्या बढ़ेगी और रास्ता चलते हुए नित नए विघ्न आ खड़े होंगे। इसलिए विष की तरह उसे अलग रखना चाहिए, अपने को उसमें डुबा नहीं देना चाहिए, वरन जरूरत के समय के लिए उसे सुरक्षित रखना चाहिए, तलवार रोज काम में नहीं आती, उसे तो कभी-कभी मौके पर ही चलाया जाता है। इसी प्रकार न्याय की रक्षा के योग्य, तामसिक दंड देने योग्य शक्तियों का संग्रह करना चाहिए, पर उनका प्रयोग आवश्यकता पड़ने पर विवेकपूर्वक ही करना चाहिए।

आप सत् तत्त्व की उपासना के लिए योग-साधना का अवलंबन कीजिए, अपने को पवित्र, अविनाशी और निर्लिप्त आत्मा मानिए। आत्मा को दुष्ट, दुराचारी, तुच्छ, दीन, दुखी, असमर्थ मत समझिए, वरन अपनी महानता पर, सत्यनिष्ठा पर विश्वास रखिए। 'मैं पवित्र हूँ' इस मंत्र को सदैव दोहराते रहिए। इससे आपके अंतस्तल से एक विद्युतमयी प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है, जो रोम-रोम में पवित्रता का संचार करती है। '**सोऽहम्**' सिंह की दहाड़ सुनकर अपवित्रता और कुभावना रूपी शशक-शृगाल डर के मारे भाग जाते हैं। आत्मसम्मान की ज्योति अपने अंदर जलाते ही वास्तविक मनुष्यता का उदय होता है, जो अपने में पवित्र दैवी अंश का अनुभव करता है, वह चक्रवर्ती सम्राट् की तरह महान बन जाता है। उसका दृष्टिकोण इतना ऊँचा हो जाता है कि पापमय कार्यों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता, वह एक उद्देश्यपूर्ण जीवन जीता है। "मैं अविनाशी हूँ, मैं निर्लिप्त आत्मा हूँ।" यह आध्यात्मिक हुंकारें जिसे सुनाई पड़ती हैं, जो इनको श्रवण करता है और हृदय-पटल पर अंकित करता है, वह बहुत शीघ्र अपनी अपूर्णताओं को हटाता हुआ पवित्र-अविनाशी-निर्लिप्त आत्मा, परमात्मा बन जाता है।

सतोगुण-सूक्ष्म, आंतरिक, आध्यात्मिक उन्नति का संचालक है। रजोगुण—बाह्य, सांसारिक, सामाजिक जीवन को आगे बढ़ाने वाला है। प्रेम, सेवा, सहायता, भलमनसाहत, नम्रता, शिष्टता, त्याग,

उदारता का पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक प्रश्नों से सीधा संबंध है। दूसरों को अपने वश में रखने का यही जादू है। वशीकरण विद्या इससे बढ़कर और कुछ हो नहीं सकती। भलाई, परोपकार, मधुर भाषण, मुस्कराहट, नम्रता आदि प्रेममय गुणों को अपनाना असंख्य लोगों को अपना सच्चा मित्र और भला सहयोगी बनाने का वैज्ञानिक तरीका है। जिसे दूसरों के सच्चे सहयोग की आवश्यकता न हो, वरन अनेक प्रकट-अप्रकट शत्रुओं से अपने को घिरा रखना चाहता हो, राजसिक आनंद में दिलचस्पी न रखता हो, उसके लिए इन प्रेममय गुणों की आवश्यकता नहीं है, वह चाहे जैसा स्वतंत्र आचरण रख सकता है, परंतु जिसे दूसरों का सहयोग चाहिए, उसके लिए 'भलमनसाहत का व्यवहार' यह एक ही तरीका है। सब कोई जानते हैं कि थैली खरचने से थैला मिलता है, पूँजी लगाने से व्यापारिक लाभ प्राप्त होता है, बीज बोने से खलियान बटोरने का सौभाग्य हाथ आता है। त्याग करना एक प्रकार का आध्यात्मिक व्यापार है, जिसका फल इसी लोक में हाथोंहाथ मिल जाता है। जो अपने स्वार्थों को दूसरे के हक में छोड़ देता है, गंभीर परीक्षण करके देखा जाए तो वह घाटे में नहीं रहता। जितना त्याग किया गया है वह किसी-न-किसी प्रकार से फिर उसके पास वापस लौट आता है, साथ में आश्चर्यजनक ब्याज लाता है सो अलग। अशिक्षित किसान इस ईश्वरीय अटल नियम को भली प्रकार जानता है और विश्वासपूर्वक बिना किसी को जमानतदार बनाए, खेत में जाकर चुपचाप बीज बो आता है, दूसरे समय दूसरे रूप में उसका त्याग ब्याजसमेत उसको मिल जाता है। हम लोग जितने ही शिक्षित होते जाते हैं, बुद्धिमान बनते जाते हैं, उतने ही उन ठोस एवं अटल नियमों से दूर हटते जाते हैं, उनको अविश्वास की दृष्टि से देखते जाते हैं। हमें पीछे लौटना होगा, आनंद की प्राप्ति के लिए जो उलटे प्रयत्न हो रहे हैं, उन्हें छोड़ना होगा। वह देखिए अशिक्षित किसान एक विद्वान प्रोफेसर की भाँति हमें अपनी मौन वाणी में कह रहा है कि ऐ! कुछ प्राप्त करने की

इच्छा करने वालो! त्याग करना सीखो। देने से मिलता है, त्याग करने से प्राप्त होता है, बोंने से उगता है।

तमोगुण के दो स्वरूप हैं—एक आत्मरक्षात्मक, दूसरा आक्रमण-निवारक। आत्मरक्षात्मक तमोगुण की निरंतर वृद्धि करनी चाहिए। स्वास्थ्य संपादन, व्यायाम, परिश्रम, उपार्जन, संग्रह, वृद्धि ये आत्मरक्षात्मक है। शक्तियों का अधिकाधिक संपादन करना जीवनयापन के लिए बहुत जरूरी है, यह उन्नति की प्रारंभिक सीढ़ी है। न्याय की रक्षा शक्ति से ही हो सकती है। शरीर परिश्रम करता है, उसे भोजन देना न्याय है। यह न्याय तभी संभव है जब उपार्जन की शक्ति हो। जीवन स्थिर रखने, ठीक तरह चलते रहने, उन्नत करने के लिए शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, बौद्धिक, सामाजिक, राजनीतिक शक्तियों की आवश्यकता है। इनके बिना अपने ईश्वरप्रदत्त अधिकारों की रक्षा नहीं हो सकती, इसलिए जहाँ तक हो सके, जितना भी हो सके सब प्रकार की शक्तियों को एकत्रित करना चाहिए। तमोगुण का यह पहलू जिसका सार—घोर परिश्रम करना, निरंतर कर्म में प्रवृत्त रहना, भरपूर शारीरिक और मानसिक परिश्रम करना है, नितांत आवश्यक और अनिवार्य है।

तमोगुण का आक्रमण-निवारक पहलू यह है कि दूसरों में बदमाशी का जो अंश है, उसे दृष्टि से ओझल न किया जाए। दुनिया में बुराइयाँ काफी हैं, कभी-कभी तो वे भलाइयों के बराबर हो जाती हैं या उससे भी अधिक बढ़ने लगती हैं। पाप की इस जमाने में खूब बढ़ोत्तरी है, यदि उससे सावधान न रहा जाए और भूल के कारण उसका आक्रमण सहना पड़े, तो यह कोई बुद्धिमानी न होगी। लोगों की बेवकूफियों, बुराइयों, बदमाशियों, चालाकियों से अपरिचित मत रहिए। उनसे अपने को बचाने में होशियार रहिए, ऐसा न हो कि आपकी भलमनसाहत का लोग नाजायज फायदा उठाएँ और उल्लू समझकर मजाक उड़ाएँ। ठग, धूर्त, चोर, दगाबाज, क्रूर और परपीड़क लोगों की नस-नस से आपको परिचित होना चाहिए और उनसे

अपना बचाव करने के लिए कूटनीतिक बुद्धिमानी, तीव्र दृष्टि एवं अवसरवादिता की जरूरत है। जो व्यवहार भले आदमियों के साथ उचित है, उसे दुष्टों के साथ नहीं किया जा सकता। दूध पिलाकर मित्र, संबंधियों, पूज्य, अतिथियों का सत्कार किया जाता है, पर सर्प का वैसा सत्कार करने से घर में रहने वालों का जीवन खतरे में पड़ जाएगा। बदमाशी के निवारण के लिए तमोगुण का निवारक पहलू काम में आता है। उचित शिक्षा देने के लिए, न्याय-मार्ग पर लाने के लिए, दंड और भय की आवश्यकता है। जिस हिंसा से अहिंसा का मार्ग साफ हो वह अहिंसा ही है, जिस अशांति से शांति की सृष्टि होती है तथ्यत: वह शांति ही है। जिस बुराई से भलाई की बढ़ती हो उसे भलाई ही कहा जाएगा। तमोगुण का दूसरा पहलू भी आवश्यक तो है, पर इसका उपयोग विशेष अवसरों पर दुष्टता-निवारण के लिए ही करना चाहिए, सो भी अंधे होकर नहीं विवेकपूर्वक। न्याय की रक्षा के लिए तम तत्त्व का आचरण करना अनुचित नहीं है, पर यह अनुचित है, कि जरा-सी उत्तेजना के कारण क्रोध में पागल होकर अनर्थ के लिए तत्पर हो जाया जाए।

सत्य, प्रेम और न्याय की त्रिवेणी में स्नान करने से तीर्थराज का पुण्यफल प्राप्त होता है। तीन पहलुओं में जीवन बँटा हुआ है, उसका संचालन तीन तत्त्वों से हो रहा है। यदि उसे ठीक प्रकार सर्वांगपूर्ण सुखी-संपन्न बनाना है तो त्रिविध दृष्टिकोण को अपनाना होगा। सत्य, प्रेम, न्याय का त्रिविध धर्म सत्य है, सनातन है, शाश्वत है। संपूर्ण सफलताओं का सार इसी धर्म के अंतर्गत निहित है। इस व्यावहारिक धर्म की उत्तमता पर विचार कीजिए और भले प्रकार हृदयंगम करके इस शांतिदायक सत्पथ पर अग्रसर हो जाइए ।

□

तीसरा पाठ

उद्देश्य के लिए जीवित रहिए !

जीवन का साधारण क्रम चलाते रहने से मनुष्य का काम नहीं चल सकता। पशु-बुद्धि तो आहार, निद्रा, भय की शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति के उपरांत शांत हो सकती है, परंतु मानव आकांक्षा तृप्त नहीं हो सकती। हम उद्देश्यमय जीवन जीना चाहते हैं, कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहते हैं, ईश्वर के सामने अपनी सचाई साबित करना चाहते हैं, जीवन जैसे बहुमूल्य कोश का सदुपयोग करना चाहते हैं। निरुद्देश्य जीवन किस काम का? जिन्होंने मनुष्यता में प्रवेश नहीं किया है, वे शूद्र श्रेणी के नर-पशु चाहे जिस तरह अपने को अव्यवस्थित पड़ा रहने दें, पर जिनमें मनुष्यता की चेतना उत्पन्न हो गई है, वे उद्देश्य के लिए जीवित रहना पसंद करते हैं। हिंदू धर्म में द्विजत्व मनुष्यता का सूचक माना गया है। जो लोग पशुता से ऊँचे उठकर मनुष्यता में प्रवेश करते हैं उन्हें द्विज कहा जाता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन द्विज वर्ण हैं। असल में मानव जीवन के ये तीन उद्देश्य हैं। संसार में सबसे बड़ा काम दुःखों का निवारण करना है, जिससे अविच्छिन्न सुख की प्राप्ति हो सके। दुःखों के तीन कारण हैं—(१) अभाव, (२) अन्याय, (३) अविद्या। चौथा और कोई कारण नहीं है, जिसके कारण दुःख उत्पन्न होता हो। अमुक वस्तुओं के न होने से, किसी के द्वारा सताए जाने से अथवा ज्ञान न होने से नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। दुःखों का अंत करना यह सबसे बड़ा काम सामने है, इस कार्य की तीन श्रेणियाँ होने के कारण रुचि-भिन्नता के अनुसार तीन प्रकार के लोगों में इस कार्य को बाँट दिया गया है। जो लोग वस्तुओं के अभाव को कला-कौशल, शिल्प, कृषि, व्यापार से पूरा करते हैं, जनता के अभावजन्य कष्ट को मिटाते हैं, उनकी वैश्य संज्ञा ठहराई गई। जो

राजनीति में भाग लेते हैं, राष्ट्र-रक्षा, व्यवस्था, दुष्टों को दंड देना, वेतन मात्र लेकर शारीरिक और मानसिक श्रम करना, बलवृद्धि के साधन जुटाना, अन्याय-निवारक शक्तियों का उत्पादन एवं संचय करना आदि के द्वारा अन्यायजन्य कष्टों का निवारण करना अपना कार्यक्रम बनाते हैं, वे क्षत्रिय हैं। जो विद्या की उन्नति करना, ज्ञान का प्रसार करना, रहस्यों का उद्‌घाटन करना, सचाई से परिचित कराना, पथ-प्रदर्शन करना, अनिष्ट पथ से सावधान करना आदि मार्गों द्वारा जो अविवेकजन्य कष्टों को दूर करना अपना उद्‌देश्य बताते हैं, वे ब्राह्मण वर्ग के कहे जाते हैं। तीन कष्टों का निवारण करने के लिए वर्ण-व्यवस्था की रचना हुई है। मानव जीवन के ये तीन उद्‌देश्य हैं, इन्हीं उद्‌देश्यों में से एक को प्रधान रूप से चुनना पड़ता है, दूसरे तो गौण रूप से अपनाने पड़ते हैं।

'आप अपना क्या उद्‌देश्य नियत करें?' इस प्रश्न की विवेचना करना ही यहाँ हमें इष्ट है। वर्ण-व्यवस्था की गहराई में जाने का यह अवसर नहीं है। सेवा का उद्‌देश्य परमात्मा-विश्वात्मा की पूजा, जो उसकी दृश्य प्रतिमाओं, शरीरधारी आत्माओं की सेवा-सहायता द्वारा ही हो सकती है। विश्व-सेवा का व्यावहारिक रूप अपने निकटस्थ लोगों की सेवा करना है, शुभ-संकल्पों द्वारा प्राणिमात्र के साथ सद्‌व्यवहार हो सकता है, पर शारीरिक और क्रियात्मक सहयोग उन्हीं लोगों तक संभव है, जिन तक अपनी पहुँच हो सकती है, जो भाषा, वेश, भाव की समानता के कारण अपने निकट हैं। आप यदि विश्व-सेवा के लिए अफ्रीका को अपना कार्यक्षेत्र चुनें, तो वहाँ जाने की सरकारी आज्ञा प्राप्त करना, यात्रा का प्रबंध करना, नई भाषा सीखना, नया समाज अपनाना, रीति-रिवाजों में उनके समान बनना आदि असंख्य कठिनाइयों के पश्चात् अफ्रीका निवासियों की थोड़ी-सी सेवा करने के समर्थ होंगे, किंतु यदि अपने देश में ही कार्य आरंभ करें, तो एक भी अनावश्यक झंझट न उठाना पड़ेगा

और समय तथा शक्ति का अच्छा उपयोग हो सकेगा। इन्हीं सब बातों पर विचार करते हुए अनुभवी महापुरुषों ने देश-जाति की सेवा करना, विश्व-सेवा का, ईश्वर-पूजा का व्यावहारिक रूप बताया है। जो पुरजा जिस मशीन का है, वह उसी में जुड़कर अपना जीवन सार्थक कर सकता है, दूसरे मॉडल की बनी मशीन में वह फिट न बैठेगा, जबरदस्ती लगाया गया तो या तो खुद टूट जाएगा या मशीन को तोड़ देगा। समान विचार के लोगों को जाति और निर्बाध आवागमन की एवं शासन की राजनीतिक परिधि को देश कहते हैं। देश-जाति के मर्यादित क्षेत्र में अपने लक्ष्य के अनुसार कार्य करते हुए ईश्वर को प्राप्त करना एवं जीवन को सफल बनाना संभव है। पाठकों को इसी मार्ग का अवलंबन करना उचित है।

वर्तमान समय असाधारण समय है, नए युग का ब्राह्ममुहूर्त इसे कहा जा सकता है, अंधकारपूर्ण निशा समाप्त होकर ऊषा की स्वर्णिम लालिमा प्रकट हो रही है, सत्य का सूर्य अब उदय हुआ ही चाहता है। ऐसे संक्रांति काल में देश-जाति में अनेक नई समस्याएँ, अनेक नई गुत्थियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उन्हें सुलझाने के लिए नया दृष्टिकोण चाहिए। तीनों वर्णों के लिए एक नवीन चुनौती सामने आ रही है। पिछली शताब्दियों में वैज्ञानिक उन्नति ने ऐसी टेढ़ी-मेड़ी उलझनें उत्पन्न कर दी हैं, जिनके जाल में फँसकर मानव बुद्धि विचलित हो गई है, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के अंतर को पहचानना अब बहुत कठिन हो गया है। यह विकट जंजालों में भरा हुआ समय अब अधिक देर न ठहर सकेगा, मनुष्य इससे ऊब गया है और सीधा-सच्चा रास्ता तलाश कर रहा है। तलाश करने से सब कुछ मिलता है। कुकर्म और दुर्बुद्धि के फलस्वरूप अकाल, महामारी, चिंता, युद्ध आदि के भयंकर दुःख भोगने पड़ रहे हैं। इन दुःखों से छुटकारा पाने की तीव्र उत्कंठा उत्पन्न होते हुए देखकर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि बहुत ही शीघ्र इच्छानुकूल समय का आगमन होगा।

वर्तमान काल में जीवनयापन करने वाले विवेकवान, अध्यात्म-पथ के अनुयायियों को जीवन-लक्ष्य पार करने के लिए सामयिक कार्यक्रम निर्धारित करते समय वर्तमान परिस्थितियों का ध्यान रखना होगा। आर्य जाति के प्राचीन वैदिक सिद्धांत इस समय बड़े ही सड़े-गले और विकृत रूप में आ गए हैं। विदेशी आक्रमणों ने हमारी शुद्ध संस्कृति में इतना अधिक विष घोल दिया है कि वर्तमान समय में जो प्रथाएँ और विचारधाराएँ प्रचलित हैं, वे मूल सिद्धांतों से करीब बिलकुल उलटी पड़ती हैं, मिलावट इतनी अधिक हुई है कि तीन-चौथाई नकलीपन आ गया है। समय-परिवर्तन के साथ-साथ जातीय विचारधाराओं और प्रथाओं में परिवर्तन होते रहना आवश्यक है, इस तथ्य को भली भाँति समझते हुए विवेकवान अध्यात्मवादियों का परम पवित्र कर्त्तव्य है कि युग-निर्माण में हाथ बँटाएँ। राजनीतिक दासता के कारण जितना कष्ट उठाना पड़ता है, उससे भी अधिक बौद्धिक दासता के कारण सहन करना होता है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शारीरिक सुखों का मूल साधन मानसिक परिवर्तन है।

गीता ने 'ऊर्ध्वमूलमधः शाखा' के श्लोक में यह बताया है कि मस्तिष्क जीवन की जड़ है और शरीर के अन्य अंग शाखाएँ हैं। कार्य की जड़ विचारों में होती है और उसके पत्र-पुष्प बाहर दीख पड़ते हैं। मनुष्य जाति को दुर्भाव, दुर्बुद्धि और दुष्कर्मों से बचाकर सत्कर्मों की ओर ले चलने के लिए सबसे प्रथम और सबसे अधिक आवश्यकता बौद्धिक क्रांति की है। जिन विचारों से समाज इस समय ओत-प्रोत है, यदि उनमें परिवर्तन न हुआ तो कोई भी ऊपरी उपचार फलप्रद न होगा। ब्राह्मण वर्ग को सर्वोच्च माना गया है क्योंकि प्रेरक शक्ति उसी के अंदर है, बुद्धि की उत्तमता पर जीवन की उत्तमता निर्भर है। इसी प्रकार विचारों की रचना के अनुसार समाज की स्थिति होती है। हमारे देश-जाति का चतुर्मुखी पतन जिन

कारणों से हुआ है, उनमें बौद्धिक पतन सबसे प्रधान है। जिस हेतु से अधःपात हुआ है, उसे दूर करके ही पुनः उन्नत दशा को प्राप्त किया जा सकता है।

आप उद्देश्यमय जीवन जीने की इच्छा करते हैं। मानव जीवन को ईश्वर की इच्छा के अनुसार व्यतीत करना चाहते हैं, तो अभाव, अन्याय या अज्ञान को दूर करने का व्रत ग्रहण करना होगा। जिस वर्ण में आपकी स्थिति है, उसके अनुसार कार्य करना चाहिए। साथ ही युग-परिवर्तन की वर्तमान संध्या का ध्यान रखते हुए सामयिक धर्म का पालन भी करना चाहिए। अग्नि को बुझाने के लिए, कुएँ में गिरे हुए को निकालने के लिए, शत्रु का मुकाबला करने के लिए जैसे अपने-अपने नियत कार्यों को छोड़कर सब लोग उस सामयिक आवश्यकता को पूरा करने में लग जाते हैं, उसी प्रकार अपने समाज को अवनति के गर्त में से निकालने के लिए जुट जाइए। आज युग की पुकार यह है कि जबरदस्त बौद्धिक परिवर्तन किया जाए। यह कार्य ब्राह्मण वर्ग का है, किंतु इस समय वह वर्ण निर्बल हो रहा है, अथवा यों कहिए कि जितने बड़े कार्य को पूरा करना है, उसे इतनी सीमित शक्ति से पूरा नहीं किया जा सकता। अतएव सब लोगों को मिलाकर उस भार को उठाना चाहिए। आज ब्राह्मणत्व निर्बल हो रहा है अथवा अधिक भारग्रस्त है, अज्ञान की पीड़ा को दूर करने के लिए सब किसी को उसकी सहायता करनी चाहिए।

आप जरा उदार और दयार्द्र होकर स्वजातीय बंधुओं की दुर्दशा का निरीक्षण कीजिए। बीमारी, गरीबी, बेकारी, अभाव, चिंता, कलह, क्लेश, वियोग, पाप, ममता, मोह के कारण दुःखों की घोर घटाएँ छाई हुई हैं। बेचारा मानव प्राणी नाना कलह-कष्टों में पिसा जा रहा है, इन दुःखों को देखकर जिसका हृदय नहीं पसीजता, आँखों से आँसू नहीं आते और इन्हें मिटाने के लिए जिसकी भुजाएँ नहीं फड़कतीं, उसमें और पाषाण में कुछ विशेष अंतर नहीं रह जाता।

हम मानते हैं कि आप प्रेमी, दयालु और सेवाभावी हैं, दुखियों का दुःख मिटाने में अपने जीवन को सार्थक करना चाहते हैं।

सामने देखिए, एक बीमार पड़ा हुआ है, आप उसकी दवा-दारू, सेवा-सुश्रूषा करके अच्छा कर देते हैं, लेकिन अभी दस दिन भी नहीं बीतने पाते कि वह फिर बीमार पड़ जाता है। बेचारा स्वास्थ्य के नियमों से परिचित न था, बीमारी से उठने के बाद कुपथ्य करने लगा, फिर बीमार पड़ गया। इसकी तो रोज ही ऐसी सेवा करनी पड़ेगी, आप कहाँ तक अच्छा करेंगे।

सामने देखिए, एक बड़ा दरिद्र भिक्षुक आ रहा है, उसकी सहायता करना आपका कर्तव्य है। अपनी थाली में जो भोजन आया है, आप उसे खिला देते हैं और स्वयं भूखे रह जाते हैं, पर अरे यह देखिए आपका प्रयत्न तो व्यर्थ रहा। कल आपने स्वयं भूखे रहकर जिसकी भूख मिटाई थी, वह तो आज फिर भूखा-का-भूखा ही है। बेचारा उपार्जन के परिश्रमपूर्ण मार्ग की महत्ता से अनभिज्ञ है, ऐसे ही भीख-टूक माँगकर जीवन बिताता है, जिंदगीभर उसे बैठाकर आप कहाँ तक खिलाएँगे?

सामने देखिए, एक मनुष्य को किसी दूसरे कष्ट ने सताया है, आप उसकी रक्षा के लिए चलते हैं। उसकी आपत्ति अपने सिर लेते हैं, बलवान से उलझकर किसी प्रकार उस बेचारे निर्बल मनुष्य को दुष्ट के पंजे से छुड़ाते हैं। पर ओफ, आपका सारा प्रयत्न व्यर्थ चला गया, कल उसे एक जालिम के पंजे से छुड़ाया था, आज दूसरे का शिकार बन गया। यह तो जहाँ जाएगा, वहीं अपने दब्बू स्वभाव के कारण जुल्म का शिकार बन जाएगा, यह तो रोज का काम है, आप कहाँ तक इसे बचाते फिरेंगे?

सामने देखिए एक आदमी का धन चोरी चला गया है, बेचारा दहाड़ मारकर रो रहा है। आप इसे अपना धन दे देते हैं, जिससे उसे संतोष हो जाए। शायद अब यह बहुत दिनों प्रसन्न रहेगा। अरे, यह

क्या? अभी चार दिन भी नहीं हुए, इसे अपना धन देकर संतुष्ट किया था । आज तो यह फिर उसी तरह रोता है, जरा पूछिए तो कारण क्या है? कहता है—आज मेरे घर की दीवार टूट गई है। यह तो बड़ा बखेड़ा है, दुनिया की नाशवान चीजें तो रोज-रोज नष्ट होने वाली हैं, यह तो हर नाश पर रोएगा। इसे संतोष कराना आपके वश की बात नहीं है।

इस बेचारे अभावग्रस्त को देखिए, कितनी प्रार्थना के साथ एक-एक पैसा माँग रहा है। आप कहते हैं चल भाई, ऐसे एक-एक पैसा क्या माँगता है, मेरे साथ चल, जिस वस्तु की आवश्यकता हो, मुझसे ले लिया करना। वह गरीब आदमी साथ चल देता है। पहले भोजन माँगता है, वह देते हैं, फिर वस्त्र माँगता है, वह देते हैं, अब घर चाहिए, वह भी दिया, फिर स्त्री, नौकर-चाकर, गाड़ी, धन, संतान, कीर्ति, भोग-विलास, वैभव, राज पाट आदि की माँगें क्रमशः उत्पन्न होती गईं। आप तो मामूली आदमी हैं, इन बढ़ती हुई इच्छाओं को कहाँ तक पूरा करेंगे? तृष्णा तो सात समुद्रों को पाकर भी शांत नहीं हो सकती।

दो व्यक्तियों में झगड़ा हो रहा है, आप उसे निपटाने के लिए चलते हैं। अपनी सारी बुद्धि लगाकर उस समय मामले को तय करा देते हैं, पर दूसरे दिन वह विग्रह दूसरे रूप में फिर उपस्थित हो जाता है। एक व्यक्ति अनुचित काम कर रहा है, आज उसे धिक्कार कर या समझा-बुझाकर अपने प्रभाव से या बलपूर्वक आप उसे रोक देते हैं, किंतु कल वह फिर उसी प्रकार के कार्य करने पर उतारू है। एक मनुष्य एक प्रकार के भ्रम में उलझकर अपने को दुखी बनाए हुए है। आप उस समय भ्रम को हटा देते हैं, पर दूसरे क्षण दूसरी सनक उस पर सवार हो जाती है। उत्तम व्यवस्था चलाने और बुराई रोकने के लिए आप कोई कानून या प्रस्ताव पास कराते हैं, लोग कोई-न-कोई बहाना ढूँढ़कर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से उसे तोड़ने लगते हैं।

आपको सारी समस्याओं पर नए सिरे से विचार करना होगा। संसार के दु:खों के कारण तथा उनको दूर करने के उपाय पर गंभीरतापूर्वक मनन करना होगा। मानव जाति के अनेकानेक कष्टों का कारण वे अभाव नहीं हैं, जो प्रत्यक्षत: दिखाई पड़ते हैं। समस्त दु:खों की जननी अविद्या है। बीमार को दवा देकर सदा के लिए अच्छा नहीं किया जा सकता। यदि उसे नीरोग बनाना है तो उसकी ज्ञान चेतना में यह बात बिठा देनी होगी कि किन उपायों से स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। यदि वे बातें मन में भर जाएँ तो वह वर्तमान बीमारी को बहुत ही अल्प समय में खोकर सदा के लिए नीरोग और स्वस्थ बन सकता है। भिक्षुक को परिश्रमपूर्वक जीविका-उपार्जन करने के मार्ग पर प्रवृत्त कर दिया जाए, तो उसको रोज-रोज की अपमानित याचना से छुटकारा मिल सकता है। निर्बलों को बलवान बनने और बलवानों को दया करने की भावना से भर दिया तो आएदिन होने वाले जुल्म सहज ही में मिट सकते हैं। कमजोर मनुष्य जब तक अन्याय का विरोध करने के लिए स्वयं कुछ करने को तत्पर नहीं होते, तब तक उन्हें ईश्वर भी बेइंसाफी में पिसने से नहीं बचा सकता। दिन-दिन बढ़ने वाली तृष्णा और नाशवान वस्तुओं की बिछोह वेदना, ज्ञान द्वारा ही दूर की जा सकती है, अन्यथा इनका निवारण किसी प्रकार हो ही नहीं सकता। इस आनी-जानी दुनिया में एक-न-एक वस्तु का बिछोह नित्य होगा। आज भाई मरा तो कल बेटा मरने वाला है, आज धन गया तो कल घर फूटने वाला है, इसके लिए रोया जाए तो निरंतर रोते रहने पर भी शांति नहीं मिलेगी। इन अवसरों पर केवल ज्ञान द्वारा ही धैर्य धारण किया जा सकता है। भूतकाल का शोक, आने वाले कष्ट, मनोविकार, पाप आकर्षण यह सब तात्कालिक प्रतिबंध तो रोके नहीं जा सकते, इनका निवारण ज्ञान द्वारा ही होना संभव है। दुनिया को एक ही दु:ख है—'अज्ञान'। उसे सुखी बनाने का एक ही उपाय है—'ज्ञान प्रसार'।

माना कि पीड़ितों को कुछ तात्कालिक सहायता की भी आवश्यकता होती है, पर पीड़ा का अंततः निवारण ज्ञान द्वारा ही हो सकता है। आप रुपया-पैसा देकर किसी की उतनी सहायता नहीं कर सकते, जितनी कि उसे इस विषम स्थिति में से निकलने का मार्ग बताकर करते हैं। मनुष्य के पास किसी वस्तु की कमी नहीं है। परमात्मा ने उसे अनंत शक्तियों का खजाना सौंपकर इस लोक में भेजा है। उसके अंदर ऐसी-ऐसी योग्यताएँ छिपी पड़ी हैं कि जिनके एक-एक कण का उपयोग करके वह सम्राटों का सम्राट बन सकता है। राजा को एक कंकड़ देकर, आत्मा को रुपया-पैसा, भोजन-वस्त्र देकर आप उसका क्या उपकार करते हैं? उसे इन टुकड़ों की जरूरत नहीं है, जरूरत केवल एक है और वह यह कि मानव जाति के अंतस्थल में सोई हुई महान शक्तियों को जगाया जाए।

समुद्र लाँघते समय हनुमान जी अपनी अशक्ति अनुभव करते हुए बड़े दीन हो रहे थे, जामवंत ने उन्हें बोध कराया कि 'हे पवन पुत्र! सत्य को समझो, ऐसे दीन वचन न बोलो, तुम्हारे अंदर तो अकूत बल भरा हुआ है।' जामवंत के उद्बोधन से हनुमान जी का सोया हुआ बल जाग पड़ा और वे एक ही छलांग में समुद्र पार कर गए। आज कोटि-कोटि हनुमान अपनी अशक्ति प्रकट करते हुए दीन वचन बोलते हैं और असफलता के तट पर बैठे-बैठे हाथ मलते हैं। इस समय ऐसे जामवंतों की जरूरत है, जो इन्हें इनके आत्मबल का उद्बोधन करके आपत्तियों का समुद्र लाँघने के लिए तत्पर कर दे।

संसार में सद्ज्ञान का प्रसार हुए बिना कलह, पाप, दुराचार, हत्या, चोरी, अशांति आदि का अंत नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य के मन में शैतान बैठा रहेगा, तब तक अन्य प्रकार के दान उसका कुछ भी भला न कर सकेंगे। इसलिए यदि आप ऐसा दान करना चाहते हैं जिससे संसार की सच्ची सेवा हो, सच्चा उपकार, स्थायी

रूप से दुःखों का निवारण हो तो ज्ञान का अमृत बाँटिए, विवेक का दान दीजिए। सद्ज्ञान प्रसार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हर मनुष्य बड़ा भारी विद्वान, वक्ता या लेखक ही हो। सचाई इतनी ठोस, खरी, प्रभावपूर्ण, तर्कसंगत होती है कि उसको समझाने में विशेष कठिनाई नहीं पड़ती। सीधी-सच्ची बात को कहने में न तो किसी होशियारी की जरूरत है और न किसी बनावट की। सद्भावपूर्वक जो बात हृदय से निकलती है, उसको समझाने का ढंग सीखने की जरूरत नहीं पड़ती। सरलता के साथ वह कही तथा समझी जा सकती है।

आप अपने अंदर ज्ञान की किरणें आकर्षित करिए और उन्हें दूसरों को बाँटने में उद्यत हो जाइए। अक्षरज्ञान एवं पोथी की विद्या बहुत दिनों में आती है, उसको समझने-समझाने के लिए हजारों स्कूल-कॉलेज खुलते जा रहे हैं। यह कार्य दूसरे लोगों का है, आप तो जीवन के मूलभूत दृष्टिकोण को समझने और समझाने का प्रयत्न कीजिए। स्कूली शिक्षा से जानकारी बढ़ती है, उससे आदमी होशियार और चालाक हो जाता है, पर 'ज्ञान' दूसरी बात है। जिस प्रकार बिना पढ़े लोग ज्ञान से वंचित रहते हैं, वैसे ही पढ़े-लिखे लोग भी उससे शून्य पाए जाते हैं। किताबें दिमाग को बढ़ा सकती हैं, पर हृदय-परिवर्तन करने की शिक्षा तो दूसरी ही है। जीवन की वास्तविक महत्ता को समझना और उसका सदुपयोग करना जिस शिक्षा के द्वारा सीखा जाता है, उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञान देने वाले और लेने वाले के लिए यह आवश्यक नहीं कि वे अमुक कक्षा तक पढ़े-लिखे ही हों। जिनका अंतःकरण स्पष्ट है, वे गुरु-शिष्य बिलकुल अशिक्षित होते हुए भी ज्ञान को सिखा सकते हैं और सीख सकते हैं।

संघबद्ध रीति से यह कार्य और सुंदरतापूर्वक हो सकता है। कई व्यक्ति मिलकर एक संघ द्वारा इस कार्य को और भी उत्तमता से कर सकते हैं। दूसरा तरीका यह है कि जो लोग इस प्रकार ज्ञान-प्रसार

के कार्य में प्रवृत्त हैं, उनके कार्य में अपनी शक्ति, सहायता को जोड़कर अधिक-से-अधिक बल प्रदान किया जाए। युग निर्माण योजना जैसे संस्थान को यदि आप जैसे उत्साही एवं कर्त्तव्यपरायण महानुभावों का सहयोग प्राप्त हो, तो वह अब की अपेक्षा हजारों गुनी शक्ति एवं सफलता के साथ सद्ज्ञान का विस्तार कर सकता है। अकेला व्यक्ति भी अपनी शक्ति के अनुसार बहुत कुछ कार्य कर सकता है।

आप इस समय ब्राह्मण धर्म की सहायता कीजिए । देश-जाति की गिरी हुई दशा को सुधारने के लिए स्वदेश बांधवों की विचारधारा पलटने में लग जाइए। अपने घर में, संबंधियों में, मित्रों में, ग्राहकों में, परिचितों में, अपरिचितों में ज्ञान के बीज बोते चलिए। उन्हें सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित करते रहिए। पुरानी प्रथा और परिपाटियाँ मिलावट होने के कारण तथा समय से पीछे की हो जाने के कारण बहुत अंशों में अनावश्यक हो गई हैं, उन्हें सुधारना अत्यंत आवश्यक है। संशोधन-परिमार्जन की, विचार और कार्य दोनों दिशाओं में जरूरत है। नवयुग निर्माण का पवित्र यज्ञ-कार्य करने के लिए आपको बढ़ना है, पुराने यज्ञकुंड में स्वाहा करनी है, ताकि नवीन सुगंधित यज्ञधूम उत्पन्न होकर देवताओं को प्रसन्न करे।

उद्देश्यपूर्ण जीवन बिताइए, लक्ष्य को लेकर जीवित रहिए। आज अज्ञान निवारण का महान कार्य सामने पड़ा हुआ है। आप ब्राह्मणत्व की सहायता कीजिए और पापों से जलती हुई मनुष्यता को ज्ञान का अमृत पिलाइए ईश्वर की पूजा देश-जाति की सेवा में है। उसे सुखी बनाने का एकमात्र उपाय ज्ञान-प्रसार है। अभाव और अन्याय के दु:ख भी ज्ञान से ही दूर हो सकते हैं, सर्वतोभावेन आप ज्ञान-प्रसार में जुट जाइए, इसी में सच्चा कल्याण है।

□

चौथा पाठ

कुशल समालोचक बनिए !

दूसरों की समालोचना करना सुगम है। पराये दोष देखने में प्रवीण लोगों की अपार सेना चारों ओर घूम रही है। दुर्गुणों की वास्तविकता को जानने वाले थोड़े हैं, पर उन्हें बढ़ा-चढ़ाकर देखने की वृत्ति बहुतों में पाई जाती है। दूसरों को दोषी देखकर अपने को उससे ऊँचा अनुभव करने का एक हलका-सा अवसर मिलता है, इस हलके से लाभ का लोभ-संवरण न करके सत्य-असत्य तथ्यों के आधार पर अथवा केवल कल्पना द्वारा दोषारोपण करके अपनी आत्मगौरव की आकांक्षा को भद्दे रूप से तृप्त करते हैं। ऐसे लोग बहुत हैं जो अधर्म और असत्य को कल्पना का रंग देकर दूसरों को दोषी ठहराने में और उस दोषारोपण को लच्छेदार भाषा में वर्णन करने में रस लेते हैं।

मनुष्य की पहचान करना एक आध्यात्मिक कला है, जिसके आधार पर प्रसन्नता के साथ संसार में रहना और लोक-व्यवहार में चतुर होना संभव है। कौन आदमी कैसा है? इसकी वास्तविक जानकारी होने पर तदनुकूल व्यवहार करना सरल होता है। अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए व्यक्तियों की बाहरी रूपरेखा जानने से ही काम नहीं चलता, वरन उनकी भीतरी स्थिति समझना भी आवश्यक होता है। अपने को दूसरे के प्रभाव में किस हद तक जाने दिया जाए? इस प्रश्न का ठीक-ठीक निर्णय उपर्युक्त जानकारी के द्वारा ही हो सकता है। सत्संग का लाभ उठाने एवं ठगों के चक्कर से बचे रहने की असाधारण सफलताएँ इस आध्यात्मिक कला द्वारा ही संभव हैं।

दूसरों की मानसिक स्थिति समझने से भी अधिक उपयोगी एवं आवश्यक बात अपने आप को ठीक, सही और सच्चे रूप में

समझना है। जिस प्रकार दूसरों में दोष देखने की लत का बाहुल्य देखा जाता है, वैसे ही अपनी योग्यताओं के बारे में बढ़ी-चढ़ी भ्रमपूर्ण धारणाएँ बनाकर वास्तविकता से दूर हट जाते हैं। ऐसी दशा में अपनी योग्यता के अनुरूप कार्य चुनने में भारी बाधा उपस्थित होती है और आत्मसुधार तो करीब-करीब असंभव हो जाता है। किसी बात की वास्तविकता को अपना हृदय जब तक स्वीकार न करे, तब तक दूसरों के कहने से कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। मस्तिष्क हृदय का गुलाम है, जो बात मन में बस रही है, उसको उलटे-सीधे तर्कों से पुष्ट करने का दिमाग प्रयत्न करेगा। यदि बहस में हार जाए तो वितंडा खड़ा करेगा या चुप हो जाएगा, पर किसी भी दशा में उस तथ्य को स्वीकार न करेगा, जो हृदयगत मान्यता के विरुद्ध है। अपनी स्थिति के बारे में नब्बे प्रतिशत लोग दुराग्रही होते हैं, अपने को जैसा कुछ उलटा-सीधा उन्होंने समझ लिया है, उसमें कोई और संशोधन उन्हें ठीक नहीं जान पड़ता।

'कोरी कल्पना के आधार पर अपनी स्थिति को अत्यधिक घटा-बढ़ाकर समझ बैठना और फिर उसको मानते रहने का दुराग्रह करना।' यह ऐसी भयंकर मानसिक बीमारी है, जो मनुष्य को आधा पागल बना देती है और आत्मिक उन्नति के स्रोतों को बिलकुल नष्ट कर देती है। झूँठ-मूँठ अपनी शेखी बघारने वाले लोग आपने देखे होंगे, वह केवल झूठे ही नहीं, वरन उपर्युक्त मानसिक रोग से भी बहुत अंशों में ग्रसित होते हैं। उनके मन में एक ऐसी कल्पना घर बना लेती है कि वे कोई बड़े आदमी हैं और उस बड़प्पन की पुष्टि के लिए अंतर्मन की अदृश्य प्रेरणा के अनुसार शेखी बघारकर अपने भ्रम को पुष्ट करते हैं। यदि उन्हें समझाया जाए कि तुम शेखी मारते हो, झूँठ बोलते हो तो वे लज्जित नहीं होते, वरन प्रतिरोध करने को तैयार हो जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि वह शेखी कोरा मनोरंजन या मसखरापन ही नहीं है, वरन उसके पीछे कोई गहरा

कारण भी है। यह कारण वही उपर्युक्त मानसिक बीमारी है, जिससे ग्रसित रोगी अपने बारे में उलटी-सीधी कल्पनाएँ कर बैठता और फिर उन्हें दुराग्रहपूर्वक सच समझने की हठ करने लगता है।

हमने इन पुस्तकों में कई बार अपनी योग्यताओं और शक्तियों के उन्नत होने पर विश्वास करने को कहा है, उसका अर्थ आध्यात्मिक सद्गुणों पर विश्वास करना है। शेखीखोर लोग आत्मिक उन्नति पर विश्वास नहीं करते, वरन शारीरिक एवं भौतिक स्थिति के बारे में उलटी-सीधी धारणा बना लेते हैं जो कि बहुत ही घातक है। अपनी आत्मिक योग्यता और महत्ता की संभावना पर विश्वास करना उचित है, पर उसका अर्थ वर्तमानकालीन स्थिति की ओर से आँखें बंद कर लेना नहीं है। ईश्वरोपासना के लिए, आत्मोन्नति के लिए, आत्मनिरीक्षण एवं आत्मसंशोधन आवश्यक है। उन्नति के मार्ग पर चलने के लिए यात्रा की विघ्न-बाधाएँ हटाते चलने का भी ध्यान रखना पड़ता है।

आप कुशल समालोचक बनिए, तत्त्वदर्शी बनिए, दृष्टा बनिए, सत्य को समझने की योग्यता प्राप्त कीजिए। एक निष्पक्ष परीक्षक की तरह अपने विवेक को अलग खड़ा कीजिए और उसके द्वारा अपने वर्तमान शारीरिक और मानसिक शरीर की वैज्ञानिक परीक्षा कराया कीजिए। 'एक्स-रे' यंत्र द्वारा शरीर के भीतरी भागों का फोटो ले लिया जाता है। आपकी परीक्षक दृष्टि एक्स-रे के समान विशुद्ध एवं यथार्थ होनी चाहिए। वर्तमान समय में शारीरिक और मानसिक कौन-कौन-से गुण-दोष घट-बढ़ रहे हैं, उसका ठीक ज्ञान आपको होना चाहिए। आत्मा महान है, सर्वगुणसंपन्न है, पर शरीर और मन वैसे नहीं हैं, शरीर स्वस्थ हो तो भी कपड़ा का मैला, फटा या अशुद्ध होना संभव है। मन और शरीर आत्मा के वस्त्र हैं, इन वस्त्रों के मैलेपन पर तीव्र दृष्टि रखना और बार-बार धोते रहना आवश्यक है।

आत्मनिरीक्षण से अपनी मानसिक स्थिति को ठीक समझा जा सकता है। अपूर्णता न मानना, अपनी निर्दोषता या सर्वोपरि बुद्धिमत्ता का दुराग्रह करना, बहुत ही घातक मानसिक रोग है। इससे जल्दी ही छुटकारा पाया जा सके, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। अपनी समालोचना बिना पक्षपात किए न्यायमूर्ति जज की तरह किया कीजिए। इसी दृष्टि से दूसरों की मानसिक स्थिति पर स्थिर चित्त से परीक्षण किया कीजिए। इस प्रकार वास्तविकता की ओर आप बढ़ेंगे, सत्य के अधिक समीप पहुँचेंगे, तात्त्विक ज्ञान से अधिक संपन्न होंगे। यही तरीका है, जिससे दुनिया को अपने लिए उपयोगी और अपने को दुनिया के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है। दूसरे का ठीक स्वरूप जानकर ही उससे ठीक काम ले सकते हैं और अपना ठीक स्वरूप जानकर उसमें से दोष निकालने और गुण बढ़ाने की व्यवस्था कर सकते हैं।

अपनी आलोचना करने और कराने में रुचि रखिए। दोषों को बारीक दृष्टि से देखकर उन्हें हटाते चलिए और गुणों को बढ़ाते रहिए। अपने विचारों और विश्वासों पर भी गंभीर दृष्टि डालते रहिए कि कहीं वे दुराग्रह के कारण वास्तविकता से दूर तो नहीं हट रहे हैं। खुली बुद्धि से हर पाप-पुण्य की वास्तविकता पर विचार किया कीजिए, पक्ष-विपक्ष की दलीलों को सावधानी के साथ सुनकर विवेक के द्वारा उचित-अनुचित का निर्णय किया कीजिए। किसी के हाथ अपनी बुद्धि मत बेचिए, किसी भी परंपरा के गुलाम मत बनिए, बौद्धिक दासता स्वीकार करने से इनकार कर दीजिए, हर भलाई-बुराई पर स्वयं अपनी स्वतंत्र बुद्धि से गंभीर विचार करने के पश्चात ही स्वीकार करने न करने का फैसला करिए। दूसरों की मानसिक स्थिति देखकर तब उसके संबंध में कोई धारणा बनाइए, केवल कार्यों का बाह्य रूप देखकर कुछ निर्णय मत कीजिए। अपने विचार, विश्वास, स्वभाव, कार्य इन

चारों पर निष्पक्ष समालोचक की दृष्टि डालकर सत्य के अधिक निकट पहुँचने का प्रयत्न कीजिए, जिससे संशोधन और सुधार के द्वारा आगे बढ़ते चलें।

आत्मनिरीक्षण की योग्यता से, अपना और दूसरों का भीतरी वास्तविक स्वरूप समझने का सदैव अभ्यास किया कीजिए। जीवन को सरल और समुन्नत बनाने वाली यह एक कला है, जिसे सीखने का हम हर एक आध्यात्मिक पथ पर चलने वाले साधक से आग्रह पूर्वक अनुरोध करते हैं।

जिओ और जीने दो!

मनुष्य इस विश्व का सर्वोच्च प्राणी है। निस्संदेह ईश्वर ने उसे इतना श्रेष्ठ, उच्च और महान इसलिए बनाया है कि वह एक आदर्श जीवन जी सके। इतनी अधिक सुविधा, साधन, सामिग्री देकर एक उत्तम शरीर के साथ प्राणी को इस लोक में भेजने में प्रभु का कुछ महान उद्देश्य छिपा हुआ है। मानसिक और आध्यात्मिक चेतना के असाधारण क्रियाशील तंतुओं का निर्माण ऐसी अद्भुत कारीगरी के साथ हुआ है कि हम इन साधनों के सदुपयोग से पिता के समस्त अधिकारों को प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं। जिस मानव जीवन की रचना पर परमात्मा ने इतना श्रम किया है, यदि वह पशुओं से कुछ भी ऊँची उपयोगिता सिद्ध न कर सके, तो यही कहा जाएगा कि इतना श्रम निरर्थक गया।

इस देवदुर्लभ शरीर को पाकर हमें अपना गौरव प्रदर्शित करना होगा। सिंह कभी सड़े हुए मांस की ओर मुँह उठाकर नहीं देखता, क्या हम तुच्छ विषयभोगों की वेदी पर अपनी श्रेष्ठता को बलिदान कर देंगे? एक सम्राट क्या कभी भिखमंगों के-से आचरण करता है? हमें यह शोभा नहीं देता कि ऐसे कामों पर उतारू हों, जो मनुष्यता को कलंकित करते हैं। हंस प्यासा मर जाएगा, पर दूध में से पानी छाँट देने का गुण न छोड़ेगा। हमें न्याय और अन्याय का अंतर करके

केवल न्याय को स्वीकार करना होगा, ताकि हमारी महत्ता सुरक्षित रहे। चातक प्यासा मरता रहता है, पर सूखे हुए गले को स्वाति के जल से ही भिगोता है। हम गरीबी का जीवन बिताएँगे, कष्ट सहेंगे, पर अन्याय से उपार्जित धन ग्रहण न करेंगे। भौंरा सुगंधित पुष्पों के आस-पास रहता है, हम भी सज्जनों और सद्विचारों के बीच अपना स्थान बनाएँगे। मानव जीवन की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ हमें इस बात के लिए बाध्य करती हैं कि ऐसा जीवन जिएँ जो जीने योग्य हो, जिससे हमारे पद के गौरव पर कलंक न आए।

धिक्कार है ऐसी जिंदगी पर जो मक्खियों की तरह पापों की विष्ठा के ऊपर भिनभिनाने में और कुत्ते की तरह विषयभोगों की जूठन चाटने में व्यतीत होती है। उस बड़प्पन पर धिक्कार है, जो खजूर की तरह बढ़ते हैं, पर उनकी छाया में एक प्राणी भी आश्रय नहीं पा सकता। सर्प की तरह धन के खजाने पर बैठकर चौकीदारी करने वाले लालची किस प्रकार सराहनीय कहे जा सकते हैं? जिनका जीवन तुच्छ स्वार्थों को पूरा करने की उधेड़-बुन में निकल गया, हाय वे कितने अभागे हैं। सुरदुर्लभ जीवनरूपी बहुमूल्य रत्न इन दुर्बुद्धियों ने काँच और कंकड़ के टुकड़ों के बदले बेच दिया। किस मुख से वे यह कहेंगे कि हमने जीवन का सद्व्यय किया। इन कुबुद्धियों को तो अंत में पश्चात्ताप-ही-पश्चात्ताप प्राप्त होगा। एक दिन उन्हें अपनी भूल प्रतीत होगी, पर उस समय अवसर हाथ से चला गया होगा और सिर धुन-धुनकर पछताने के अतिरिक्त और कुछ हाथ न रहेगा।

मनुष्यो, जिओ और जीने योग्य जीवन जिओ। ऐसी जिंदगी बनाओ, जिसे आदर्श और अनुकरणीय कहा जा सके। विश्व में अपने ऐसे पद-चिह्न छोड़ जाओ जिन्हें देखकर आगामी संतति अपना मार्ग ढूँढ़ सके। आपका जीवन सत्य से, प्रेम से, न्याय से भरा हुआ होना चाहिए। दया, सहानुभूति, आत्मनिष्ठा, संयम, दृढ़ता,

उदारता आपके जीवन के अंग होने चाहिए। शारीरिक और मानसिक बल का संचय और उसका सदुपयोग, यह प्रथम कर्त्तव्य है, जिसकी ओर हर घड़ी दत्तचित्त रहना चाहिए। बिना इसके जीवन 'जीवन' नहीं हो सकता।

न केवल उच्च जीवन स्वयं जिओ, वरन दूसरों को भी वैसा ही जीवन जीने दो। परमात्मा का आत्मा के प्रति आदेश है कि— "जिओ और जीने दो।" अपनी निर्बलता, वासना, स्वार्थपरता एवं कुभावनाओं को हटाकर गौरवपूर्ण पद प्राप्त करो और सिर ऊँचा उठाकर जीने योग्य जिंदगी जिओ। अपने इस सात्विक बल को निर्बलों की रक्षा और उनके जीवन में शक्ति प्रदान करने में नियोजित करो। यह प्रक्रिया अत्यंत ही नीच श्रेणी की होगी कि तुम स्वयं तो ऊँचे उठो और दूसरों को नीचे दबाओ। स्वयं स्वतंत्रता की इच्छा करो और दूसरों को बंधनों में जकड़ो, यह तो अपने बल का दुरुपयोग करना होगा। दूसरे की छाती पर खड़े होकर ऊपर बढ़ने की भावना इतनी सत्यानाशी और नारकीय है कि इसके द्वारा विश्व का बहुत भारी अहित हुआ है। बलवान व्यक्ति जब जालिम का रूप धारण करता है, तो वह प्रभु की इस सुरम्य वाटिका में निर्दय कुल्हाड़े का काम करता है। ऐसा क्रूर जीवन पिशाच ही बना सकता है, मनुष्य के लिए वैसा संभव नहीं है।

जीने दो, दूसरों को भी स्वतंत्रतापूर्वक जीने दो। जो भूले-भटके हों उन्हें राह पर लाओ, पर खबरदार किसी के मूलभूत अधिकारों में हस्तक्षेप मत करो। अमुक व्यक्ति, अमुक परिवार में उत्पन्न हुआ है, इसलिए उसके मानवोचित अधिकार दबाए जाएँ, यह सोचना बड़ी ही निर्दयता होगी। एक सच्ची मनुष्यता का उपासक यह नहीं कह सकता कि स्त्रियों पर पुरुषों की अपेक्षा अधिक बंधन लगाने चाहिए। शूद्रों के मानव अधिकारों का अपहरण करना चाहिए। ऐसी अनुदारता पाषण हृदयों में ही होना संभव है। सत्य का प्रेमी, न्याय का उपासक

अपने अंत:करण की ग्रंथियों को खोल डालता है। वह स्वयं उच्च जीवन जीता है, इसलिए दूसरों के जीवन की भी कद्र करता है। टुच्चा आदमी स्वयं सड़ी हुई नालियों की रूढ़ियों में बुजबुजाता हुआ गर्हित जीवन बिताता है, इसलिए वह दूसरों की भी टाँग पकड़कर नारकीय पराधीनता में सड़ने के लिए पीछे घसीटता है। वह दूसरों को तुच्छ समझता है, क्योंकि स्वयं तुच्छता में पड़ा हुआ है। वह दूसरों से घृणा करता है, क्योंकि उसने स्वयं अपनी आत्मा को घृणित बना रखा है।

आप टुच्चे मत बनिए, आप बढ़ रहे हैं, उन्नति के पथ पर चल रहे हैं, इसलिए दूसरों को भी बढ़ने दीजिए। आप अपनी आत्मा को मुक्त बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं, इसलिए दूसरों को भी स्वतंत्रता का आनंद लेने दीजिए। स्वयं बढ़िए और दूसरों को बढ़ने के लिए प्रोत्साहित कीजिए। आप महान बनिए, दूसरों में महानता लाने का प्रयत्न करिए। पाठको! तुम ईश्वर के राजकुमार हो, इसलिए वैसा जीवन जिओ जो राजकुमारों के योग्य है। संसार के दूसरे प्राणी तुम्हारे भाई हैं, उनके साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा एक भाई दूसरे के साथ करता है। जिओ, प्रसन्नतापूर्वक जिओ, पर दूसरों को भी उसी तरह जीने दो।

शक्ति बिना मुक्ति नहीं

यह बात भली भाँति हृदयगंम कर लेनी चाहिए कि शक्ति बिना मुक्ति नहीं। गरीबी से, गुलामी से, बीमारी से, बेईमानी से, भवबाधा से तब तक छुटकारा नहीं मिल सकता, जब तक कि शक्ति का उपार्जन न किया जाए। आर्य जाति सदा से ही शक्ति का महत्त्व स्वीकार करती रही है और उसने शक्तिपूजा को ऊँचा स्थान दिया है। अनेक महापुरुषों ने तो शक्ति को ही सर्वोपरि धर्म मानकर शक्ति धर्म की स्वतंत्र स्थापना की। पहले यह वैदिक धर्म का ही एक अंग

था, पीछे मद्य-मांस की वाममार्गी छाया इस पर पड़ने के कारण तिरस्कृत बन गया। शक्ति की अधिष्ठात्री देवी को दुर्गा, भैरवी, चंडी, काली, भवानी आदि नामों से पुकारा जाता है, यह असुरों से धर्म युद्ध करती है और उनका रक्तपान करके प्रसन्न होती है।

एक महात्मा का कथन है—Right is Might there-fore might is Right अर्थात 'सत्य ही शक्ति है, इसलिए शक्ति ही सत्य है।'

आत्मा की मुक्ति भी ज्ञान शक्ति एवं साधना शक्ति से ही होती है। अकर्मण्य और निर्बल मन वाला व्यक्ति आत्मोद्धार नहीं कर सकता और न ईश्वर को ही प्राप्त कर सकता है। लौकिक सब प्रकार के दु:ख-द्वंद्वों से छुटकारा पाने के लिए शक्ति की ही उपासना करनी पड़ेगी। निस्संदेह शक्ति के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। अशक्त मनुष्य तो दु:ख-द्वंद्वों में ही पड़े-पड़े बिलबिलाते रहेंगे और कभी भाग्य को, कभी ईश्वर को, कभी दुनिया को दोष देते हुए झूँठी विडंबना करते रहेंगे। जो व्यक्ति किसी भी दिशा में महत्त्व प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि अपने इच्छित मार्ग के लिए शक्ति-संपादन करें।

□

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।